ISSN 2229-6328

भाग : त्रयस्त्रिंश : चतुर्थ खण्ड

ॐ पावमानी

त्रैमासिक शोध पत्रिका

ऐतरेय ब्राह्मण में विविध विद्याएँ

ISSN 2229-6328

ओ३म्

प्रेरणास्रोत : प० पू० स्व० स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज

पावमानी

त्रैमासिकी मूल्याङ्किता वैदिक-शोधपत्रिका
भागः त्रयस्त्रिंश, चतुर्थ खण्ड (वि०सं० २०७६)

एतरेय ब्राह्मण में विविध विद्याएँ

प्रधान सम्पादक

स्वामी विवेकानन्द सरस्वती

सम्पादक

प्रो० सोमदेव शतांशु | **डॉ० वाचस्पति मिश्र**

मूल्याङ्कन

प्रो० राजेश्वरप्रसाद मिश्र
कु०वि०वि०, कुरुक्षेत्र

प्रो० ब्रह्मदेव विद्यालंकार
गु.कॉ.वि.वि., हरिद्वार

प्रकाशक

स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान

गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोला, मेरठ- २५०५०१

अक्तूबर २०१८ – दिसम्बर २०१८ **मूल्य १००.००**

एक प्रति का मूल्य	...	१०० रु०
वार्षिक सदस्यता शुल्क	...	४०० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क	...	२००० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क (छात्रों हेतु)	...	१५०० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क (संस्था हेतु)	...	५००० रु०
सहयोगी सदस्यता शुल्क	...	५५०० रु०
संरक्षक सदस्यता शुल्क	...	१०००० रु०
परामर्शक सदस्यता शुल्क	...	११००० रु०

आभार

पावमानी के इस अङ्क का सम्पूर्ण व्ययभार आश्रम के प्रति एकनिष्ठ स्व० माता प्रकाशवती जी की प्रेरणा से रस्तौगी प्रकाशन, मेरठ, उ०प्र० ने वहन किया।

• स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, मुद्रक
स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी
भोला, मेरठ- २५०५०१ (उ०प्र०)
दूरभाष : ८००६७०२५५१
अणुवाक् :pavamani86@gmail.com
जालपत्र : pavamani.in

• **पावमानी**- ISSN **२२२९-६३२८**
भाग: त्रयस्त्रिंश, चतुर्थ खण्ड
अक्तूबर २०१८ – दिसम्बर २०१८

• प्राप्ति स्थान-
गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, मेरठ

• मुद्रक
रस्तौगी प्रकाशन, मेरठ (उ०प्र०)

• प्रेरणास्रोत :
प०पू० स्व० श्री स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

• प्रधान सम्पादक
स्वामी विवेकानन्द सरस्वती

• सम्पादक
प्रो० सोमदेव शतांशु
दूरभाष : ०९८३७६४७४२७
डॉ० वाचस्पति मिश्र
दूरभाष: ०९३१९००२४०२

• **कल्पादितः** १,९७,२९,४९१२० गते
• **सृष्टि आदितः** १,९६,५८,८५१२० गते
• **युगाब्द** ५१२१
• **दयानन्दाब्द** १९५

सम्पादकीयम्

सकल ज्ञान विज्ञान के निधि वेद वैदिक संस्कृति के शाश्वत संवाहक शास्त्र हैं। तिमिरावच्छिन्न सांसारिक यात्रा में वेद ज्ञानराशि नैसर्गिक पथप्रदीप हैं। कर्त्तव्यपथ पर अग्रेसर मानव के लिए ये सनातन चक्षु हैं- **वेदाः चक्षुः सनातनम्।** ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेद अपौरुषेय एवं स्वतः प्रमाण हैं। यह ज्ञानराशि संसार की समस्त ज्ञानगंगाओं की प्रसवभूमि है। इसीलिए आचार्य मनु ने इन्हें **सर्वज्ञानमयो हि सः** कहा है। आचार्य सायण वेद की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असिद्ध विषयों का ज्ञान वेद द्वारा ही सम्भव है। सृष्टि के आदि में महामना ऋषि-मुनियों के पुनीत अन्तःकरण में आविर्भूत हुए वेद मन्त्र भाग हैं। वेद के मन्त्रों के आदिव्याख्यानभूत शास्त्र ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाते हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य दयानन्द सरस्वती अनुभ्रमोच्छेदन में लिखते हैं-

जिससे ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों के व्याख्यानभाग हैं अर्थात् **ब्राह्मणानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि अर्थात् शेषभूतानि सन्तीति।** पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी आदि शब्द भी ब्राह्मणग्रन्थ के वाचक हैं। इस प्रसंग में स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्योद्देश्यरत्नमाला में लिखते हैं-

जो प्राचीन ऐरतेय, शतपथ ब्राह्मणादि ऋषि-मुनिकृत सत्यार्थपुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं।

ग्रन्थवाचक ब्राह्मणशब्द नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होता है। **ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्** (मेदिनीकोश)। ब्रह्मन् शब्द से अण् प्रत्यय होकर ब्राह्मण शब्द निष्पन्न होता है।

ब्रह्म शब्द का अर्थ यज्ञ भी है- **ब्रह्म वै यज्ञः** (शत०ब्रा० ३/१/४/१५)। इस अर्थ को आधार बनाकर निर्वचन करने पर यज्ञिय कर्मकाण्ड की व्याख्या एवं स्वरूप निरूपित करने वाले शास्त्र ब्राह्मण कहलाते हैं। ब्रह्म शब्द के इन दोनों (मन्त्र एवं यज्ञ) अर्थों को ध्यान में रखकर भट्टभास्कर यज्ञिय कर्मकाण्ड एवं मन्त्रों की व्याख्या करने वाले शास्त्र ब्राह्मण कहलाते हैं-

ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः।

ग्रन्थवाचक ब्राह्मण शब्द की मुख्यतः दो अर्थ प्राप्त होते हैं। **ब्रह्म वै मन्त्रः** (शत०ब्रा० ७/१/१/५)। इस अर्थ के अनुसार वेदमन्त्रों की व्याख्या एवं विनियोग प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों का वेदत्वविषय प्राचीनकाल से विवाद का विषय रहा है। सायणादि प्राचीन आचार्य मन्त्र एवं ब्राह्मण दोनों को ही वेदरूप में स्वीकार करते हैं- **मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः** (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)। किन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती की इस विषय में विमति है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिक के वेदसंज्ञाविचारप्रकरण में स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं-

किं च मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् इति कात्यायनोक्ते ब्राह्मणभागस्यापि वेदसंज्ञा कुतो न स्वीक्रियते इति?

मैवं वाच्यम्। न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति। कुतः पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद् वेदव्याख्यानाद् ऋषिभिरुक्तत्वाद् अनीश्वरोक्तत्वात् कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायाम् स्वीकृतत्वात् मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्चेति।

अर्थात् ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हीं का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी है। वे ईश्वरोक्त नहीं हैं, किन्तु महर्षि लोगों के किये वेदों के व्याख्यान हैं। एक कात्यायन को छोडके किसी अन्य ऋषि ने उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी है। और वे देहधारी पुरुषों के बनायें हैं। इन हेतुओं से ब्राह्मणग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती।

वस्तुतः ऐतरेय ब्राह्मण विविध ज्ञान-विज्ञान से परिपूर् ब्राह्मण है। इस में निहित ज्ञान विज्ञान को आचार्य विभिन्न आख्यानों के माध्यम से जन सामान्य के लिए सरल एवं सुगम बना देते हैं। इन आख्यानों में शुनःशुप आख्यान प्रमुख है। शुनःशुप आख्यान के आधार पर कुछ लोग प्राचीन भारत में पुरुष बलि का समर्थन करते हैं, जो सर्वथा अनुचित है। पुरुषबलि का प्रतिषेध करना ही शुनःशेप आख्यान का फलितार्थ है। पशुबलि रूप पुरुषों को यज्ञ में पर्यग्निकृत करके मुक्त कर देना चाहिए अन्यथा दुरवस्था उत्पन्न हो जायेगी-

पुरुषं मा सन्तिष्ठिपो यदि संस्थापयिष्यति पुरुष एव पुरुषमत्स्यतीति तान् पर्यग्निकृतानेवोदसृजत् (शत०ब्रा० १३/०१/०२/१३)।

यद्यपि निर्वचनशास्त्र के रूप में आचार्य यास्य का निरुक्तशास्त्र लब्धप्रतिष्ठ है तथापि निर्वचन प्रक्रिया में ऐतरेय ब्राह्मण का महत्त्वपूर्ण योगदान है। ऐतरेय ब्राह्मण में मन्त्रगत अनेक पदों का सुन्दर निर्वचन प्राप्त होता है।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्र एवं यज्ञादि कर्मों के व्याख्यान हैं तथापि ऐतरेय ब्राह्मण में मानवीय मूल्य एवं सदाचार के परिपालनार्थ विशेष बल दिया गया है। **अवति एनं सत्यम् हिनस्ति; तस्माद् दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्; यां वै दृप्तो वदति, यामुन्मत्तः, सा वै राक्षसी वाक्** इत्यादि ऐतरेय वचन मानवीय मूल्यों के प्रबल समर्थक हैं।

आलसी व्यक्ति को श्री की प्राप्ति नहीं हो सकती- **नानाश्रान्तस्य श्रीरस्ति।** गोस्वामी तुलसीदास जी भी रामचरितमानस में लिखते हैं- **सकल पदारथ हैं जग माहीं। कर्महीन नर पावत नाहीं।** इसीलिए ऐतरेय ब्राह्मण सतत श्रम करने का उपदेश देताहै-

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो तन्द्रयते चरन्। चरैवेति चरैवेति..।

वेदादि सच्छास्त्रों का सतत आलोडन करते हुए हम भी अपने जीवन में मधु को प्राप्त करें, इन्हीं कामनाओं के साथ...

सोमदेव शतांशु

अनुक्रमणिका

ऐतरेयब्राह्मणगत शुनःशेपाख्यान

प्रो० मानसिंह[१]

'ऐतरेयब्राह्मण' की सप्तमी पंचिका (अध्याय १-३) में शुनःशेपविषयक आख्यान उपलब्ध होता है, जो 'ऋग्वेद' के प्रथम मण्डलान्तर्गत सात सूक्तों (२४-३०) पर आधृत है। तदनुसार राजा वेधस का पुत्र हरिश्चन्द्र सौ रानियों के होते हुए भी पुत्रविहीन था। उसके घर में दो ऋषि पर्वत तथा नारद रहते थे। नारद ने राजा को वरुण के पास जाकर पुत्रार्थ याचना करने और उसके द्वारा उनका यज्ञ करने का वचन देने को कहा। वरुण की कृपा से राजा को पुत्र प्राप्ति हो गई। वरुण के यज्ञार्थ उपस्थित होने पर राजा उन्हें बालक के दश दिन की आयु का होने पर, दाँत निकलने पर, दाँत गिरने पर, दाँत पुनः जमने पर और पुनः (क्षत्रिय) शिशु के शस्त्रधारी हो जाने पर यज्ञ की बात करके यज्ञ को टालते रहे। अन्त में वरुण के यज्ञार्थ आग्रह करने पर राजा ने शिशु (रोहित) को बुलाकर उसे वरुणदेव को यज्ञ में देने को कहा। उसने एतदर्थ मना कर दिया और धनुष लेकर चला गया; और वर्ष भर वन में पुनःता रहा। अतः वरुणदेव ने राजा हरिश्चन्द्र को पकड़ लिया और उसे महोदर रोग कर दिया। यह सुनकर रोहित वन से ग्राम आ गया। ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र ने उसे पुनः वन में विचारण करते रहने के लिए प्रेरित किया। एक-एक वर्ष तक वन में विचरने के बाद ज्यों ही रोहित ग्राम में प्रवेश करने लगता, इन्द्र उसे पुनः वन में विचरते रहने के लिए प्रेरित कर देते। इस प्रकार वह छह वर्षों तक वन में विचरता रहा।

छठे वर्ष वन में सुयवस ऋषि के पुत्र अजीगर्त से उसकी भेंट हुई, जो बिना

[१] **६०/३, मुंशी प्रेमचन्द मार्ग, नवीन नेहरुनगर, रुड़की - २४७६६७ (जनपद हरिद्वार)**

भोजन जीवन-यापन कर रहा था। उसके तीन पुत्र थे- शुनःपुच्छ, शुनःशेप तथा शुनोलाङ्गूल। रोहित ने ऋषि से सौ गायों के बदले अपना एक पुत्र दे देने को कहा, जिससे वह यज्ञ में उसके द्वारा अपनी रक्षा कर सके। ज्येष्ठ पुत्र तथा कनिष्ठ पुत्र को क्रमशः पिता तथा माता ने नहीं दिया; मध्यम पुत्र शुनःशेप को देने के लिए वे राजी हो गए। शुनःशेप को साथ लेकर वह ग्राम आया और पिता से उसके द्वारा अपने को यज्ञ की बलि से बचाने को बात कही। वरुण भी क्षत्रिय की बलि की अपेक्षा ब्राह्मण की बलि के लिए राजी हो गए।

इस प्रकार राजसूय यज्ञ प्रारम्भ हुआ, जिसमें विश्वामित्र होता, जगदग्नि अध्वर्यु, अयास्य उद्गाता और वसिष्ठ ब्रह्मा थे। यज्ञपशु शुनःशेप के बन्धनार्थ तथा वधार्थ किसी के भी तैयार न होने पर स्वयं पिता अजीगर्त ही सौ-सौ गायों के बदले ऐसे नृशंस कर्म कर देने के लिए उद्यत हो गया और उसके लिए तलवार तेज करने लगा। यह देखकर शुनःशेप ने अपने मोचनार्थ देवों की स्तुति की। वह स्तुति करते हुए प्रजापति, सविता, अग्नि, इन्द्र तथा अश्विनौ के पास गए, जिन्होंने उसे क्रमशः अग्नि, वरुण, विश्वेदेवाः, अश्विनौ तथा उषा की स्तुति करने का आदेश किया, जिससे वे उसका मोचन कर सकें। उषा के स्तवन के उपरान्त शुनःशेप पाशों से मुक्त हो गया।

इस आख्यान का आधार 'ऋग्वेद' (१.२४-३०) है, जिसके अनुसार शुनःशेप अपने तीन पाशों के मोचनार्थ (अर्थात् प्रजापति), अग्नि, सविता, वरुण, पुनः अग्नि, विश्वेदेवाः, इन्द्र, अश्विनौ एवं उषा प्रभृति देवों की स्तुति करता है। एक अग्नि-सम्बन्धी मन्त्र में भी शुनःशेप के पाशमुक्त होकर शान्तचित्त होने की चर्चा है।[१]

मुक्त हो जाने पर शुनःशेप विश्वामित्र की गोद में जाकर बैठ गया। पिता अजीगर्त के बहुत कहने पर भी वह उसके साथ जाने को तैयार नहीं हुआ। विश्वामित्र ने शुनःशेप को मन्त्रपूर्वक अपना पुत्र स्वीकार कर लिया और मधुच्छन्दा, ऋषभ,

---

[१] ऋ० ५-२-६, शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद् यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः।

रेणु, अष्टक तथा अन्य पुत्रों को उन्हें अपना ज्येष्ठ मानने का आदेश किया। विश्वामित्र ने शुनःशेप को 'देवरात' नाम दिया। मधुच्छन्दा तथा उनसे छोटे पचास विश्वामित्र के पुत्रों ने आदेश का पालन किया; किन्तु बड़े पचास पुत्रों को उनके शापवश अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिब आदि दस्यु बन जाना पड़ा। 'ऋग्वेद' में शुनःशेप के विश्वामित्र के अंक में बैठने का कहीं उल्लेख नहीं है। हाँ, एक मन्त्र में शुनःशेप अदिति को पुनः प्रदान किए जाने की कामना अवश्य करता है, जिससे वह पिता तथा माता दोनों को देख सके।[१] वस्तुतः अदिति तो माता, पिता तथा पुत्र सभी कुछ है।[२] विश्वामित्र तो सबके मित्र हैं।[३] उनके प्राणरूप होने के कारण भी शुनःशेप द्वारा उनका आश्रय लेना समीचीन ही है।[४]

स्वयम् अजीगर्त तथा उसके तीनों पुत्रों के नाम कुत्सित अर्थ के अभिधायक हैं। अजीगर्त का तात्पर्य है - अजीर्ण गर्त (अजीर्णो गर्तः) अर्थात् लोभादि दुर्गुणों का कभी भी पुराना न होने वाला (नित्य नवीन होने वाला) गड्ढा। तीन सौ गायों के लोभ में अपने पुत्र शुनःशेप के विक्रय, बन्धन तथा वध को समुद्यत हो जाने वाला अजीगर्त ऐसा ही एक गर्त है। उसके तीन पुत्र हैं- शुनःपुच्छ (कुत्ते की पूँछ), शुनःशेप (कुत्ते का शिश्न) तथा शुनोलाङ्गूल (कुत्ते की पूँछ) अथवा जननेन्द्रिय, जो सभी कुत्सित अर्थ के व्यञ्जक होने से उत्तम गुणों के संकेतक न होकर अधमाचरण के परामर्शक हैं। इन तीनों में निकृष्टतम शुनःशेप (कुत्ते के शिश्न) है, जो उद्दाम विषयभोगलालसा एवं दुर्वेग कामपिपासा का संकेतक हैं; अतः वह माता-पिता द्वारा विक्रयार्थ त्याग का

---

[१] वही, १-२४-१, को नौ मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

[२] वही, १-८९-१०, अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥

[३] ऐतरेयब्राह्मण, ६-२०-२१, विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस विश्वं हास्मै मित्रं भवति य एवं वेद।

[४] ऐतरेयारण्यक, २-१-१, तस्येदं विश्वं मित्रमासीद् यदिदं किञ्च तस्माद् विश्वामित्र इत्याचक्षते एतम् (प्राणम्) एव सन्तम्।

विषय बनता है। ऐसा व्यक्ति दैहिक, दैविक तथा भौतिक इन तीनों ही तापरूप पाशों में बँधा होता है। शुनःशेप सदृश पापिष्ठ व्यक्ति भी यदि विशुद्ध एवं निर्मल अन्तःकरण से देवाराधन करे तो वह सर्वविध पाशों किं वा बन्धनों से मुक्त हो देवानुग्रह तथा देवसायुज्य प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है और देवरात बन सकता है। शुनःशेप का आख्यान इसे ही प्रदर्शित करता है। शुनःशेप के देवों द्वारा मुक्त करने और विश्वामित्र द्वारा पुत्ररूप में स्वीकार करने में एक मुख्य हेतु यह तथ्य भी है कि वह सम्पूर्ण आख्यान में किसी भी प्रकार से किसी के प्रति भी अपराधी नहीं है।

शुनःशेपाख्यान कुछ विवरणभेदसहित 'वाल्मीकि-रामायण', 'महाभारत' तथा 'भागवत पुराण' में भी प्राप्त होता है। 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार आयोध्यानरेश अम्बरीष एक यज्ञ की तैयारी करने लगे। इन्द्र ने उनके यज्ञपशु को चुरा लिया। पशु की खोज में निकले महाराज अम्बरीष की भेंट भृगुतुंग पर्वत पर ऋचीक मुनि से हुई और उन्होंने उनसे मूल्य लेकर एक पुत्र बेचने का प्रस्ताव रखा। ज्येष्ठ पुत्र को पिता तथा कनिष्ठ पुत्र को माता ने देना अस्वीकार किया। ऐसी स्थिति में मध्यम पुत्र शुनःशेप ने स्वयमेव राजा के साथ चलने को कहा। अतः महाराज अम्बरीष एक करोड़ स्वर्णमुद्रा, रत्नों के ढेर तथा एक लाख गायों के बदले शुनःशेप को लेकर पुष्कर तीर्थ आए। वहाँ आतुर तथा दीन-हीन शुनःशेप अपने तपोरत मामा विश्वामित्र से मिले और उनकी गोद में गिर पड़े। शुनःशेप ने उनसे राजा अम्बरीष की कृतकार्यता तथा अपनी रक्षा की प्रार्थना की। विश्वामित्र ने अपने मधुच्छन्दा आदि पुत्रों को यज्ञपशु बनकर अग्निदेव को तृप्त कर शुनःशेप की रक्षा करने का आदेश किया; किन्तु उन्हें यह स्वीकार नहीं हुआ। क्रुद्ध विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को शाप दिया। उन्होंने शुनःशेप को पवित्र पाशों से बाँधे जाने तथा लाल पुष्पों की माला और रक्तचन्दन धारण करा देने के पश्चात् मनोवाञ्छित सिद्धि हेतु वैष्णव यूप के पास जाकर वाणी द्वारा अग्नि की (इन्द्र तथा विष्णु की) स्तुति तथा दो दिव्य गाथाओं का

गान करने को कहा। रहस्य स्तुति से सन्तुष्ट होकर इन्द्र ने शुनःशेप को दीर्घायु प्रदान की।[१]

इस प्रकार 'वाल्मीकि-रामायण' में उपलब्ध आख्यान में 'ऐतरेय ब्राह्मण' के हरिश्चन्द्र का स्थान अम्बरीष तथा अजीगर्त का स्थान ऋचीक ने ले लिया है। 'भागवतपुराण' के अनुसार अम्बरीष मान्धाता के सर्वश्रेष्ठ पुत्र थे।[२] ऋचीक्, महाभारत के अनुसार च्यवन के पुत्र थे।[३] वाल्मीकि रामायण में यज्ञस्थान के रूप में पुष्कर तीर्थ का उल्लेख है।

'महाभारत' के अनुसार हरिश्चन्द्र के यज्ञ में ऋचीक के महातपस्वी पुत्र शुनःशेप को यज्ञपशु बनाकर लाया गया था। विश्वामित्र ने अपने तेज से देवों को सन्तुष्ट करे उसे छुड़ाया था। अतः वह विश्वामित्र के पुत्रभाव को प्राप्त हो गया। देवों द्वारा प्रदत्त होने से शुनःशेप 'देवरात' नाम से प्रसिद्ध होकर विश्वामित्र का ज्येष्ठ पुत्र हुआ। विश्वामित्र के देवरात को प्रणाम न करने वाले पचास पुत्र शप्त होकर श्वपचत्व (चाण्डालत्व) को प्राप्त हो गए।[४]

'भागवतपुराण' में आख्यानसम्बन्धी विवरण संक्षिप्त है, जिनमें प्रायः 'ऐतरेयब्राह्मण' ही का अनुसरण किया गया है।[५] इस पुराण में हरिश्चन्द्र को त्रैशंकव (त्रिशंकु का पुत्र) के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[६] उन्होंने पुरुषमेध किया था।[७] इन्द्र ने प्रसन्न हो इन्हें स्वर्ण का रथ प्रदान किया था।[८]

शुनःशेपाख्यान में यज्ञ में शुनःशेप की बलि के सम्पन्न न होने के कारण प्राचीन भारत में यज्ञ में पुरुषबलि की दुष्कल्पना नहीं की जानी चाहिए। उसका प्रतिषेध ही

---

[१] वाल्मीकि-रामायण (सं० गीता प्रेस, गोरखपुर), बालकाण्ड, सर्ग ६१.६२।

[२] भागवतपुराण ९.७-१, मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः।

[३] महाभारत (सं० गीताप्रेस, गोरखपुर), अनुशासन पर्व, ४.८।

[४] वही, अनुशासन-पर्व, ३.६-८।

[५] भागवतपुराण, ९.७.८-२३; ९-१६; ३०-३७।

[६] वही, ९.७-७।

[७] वही, ९.७-२१।

[८] वही, ९.७-२३।

प्रस्तुत आख्यान का फलितार्थ है। 'शतपथब्राह्मण' के अनुसार भी पशुबलि रूप पुरुषों को यज्ञ में पर्यग्निकृत करके मुक्त कर देना चाहिए, उनका संस्थापन न करें, अन्यथा पुरुष पुरुष को खाने लगेगा।[१] अतः यज्ञप्रसंग में पुरुष की वास्तविक बलि सर्वथा प्रतिषिद्ध रही है।

शुनःशेप के पाशमुक्त होने के साथ-साथ राजा हरिश्चन्द्र भी स्वस्थ हो गए। ऋत्विजों ने शुनःशेप को यज्ञ में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया। उसने सोम का अभिषव कर अवभृथसहित सोमयाग किया। विश्वामित्र को पुत्रत्व की प्राप्ति के पश्चात् शुनःशेप (देवरात) दो वंशों के रिक्थ का वारिस हो गया - जनक अजीगर्त के मूल पुरुष जह्नु की सम्पत्ति और गाथी (विश्वामित्र के पिता) के वंश की विद्या का।[२]

[१] शतपथब्राह्मण, १३.६.२.१३, पुरुषं मा सन्तिष्ठिपो यदि संस्थापयिष्यति पुरुषऽएव पुरुषमत्स्यतीति तान्पर्य्यग्निकृतानेवोदसृजत्।

[२] ऐतरेयब्राह्मण, ७.३।

ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित - पुरोहित और उसका महत्त्व

डॉ० कन्हैयालाल पाराशर[१]

वेद का परम प्रेरणाप्रद उपदेश है- **वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।**[२]

अर्थात् हम पुरोहित राष्ट्र-रक्षार्थ सदा जागरूक रहें। उपयुक्त वैदिक सदुक्ति के सन्दर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित पुरोहित और उसके महत्त्व को जानने को आज भी उतनी ही आवश्यता है, जितनी कि वैदिक युग में रही थी।

पुरोहित शब्द का अभिप्रेतार्थ

पुरोहित शब्द का अर्थ स्वयं 'पुरोहित' शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है- पुरोहित सदैव हित पुरस्सर अर्थात् राष्ट्र और समाज का हितैषी रहा है। वैदिक युग से लेकर रामायण और महाभारत काल तक तथा उससे भी उत्तरवर्ती काल में वह भारतीय समाज और संस्कृति के पुरोधा के रूप में जाना-माना गया है। पुरोहित शब्द के एक विशिष्ट अर्थ का ज्ञान हमें ऐतरेय ब्राह्मण[३] के द्वारा होता है। तदनुसार बृहस्पति, ब्रह्मा और ब्रह्मन् का अर्थ पुरोहित ही होता है। बृहस्पति को अंगिरा कहा गया है। अंगिरा सूर्य का अपर नाम है। अपर रात्रि का सूर्य अंगिरा तथा अग्निहोत्र वेला का सूर्य भृगु है।[४] ऐतरेय ब्राह्मण में ही कहा है कि - **ये अङ्गारा आसन् तेऽङ्गिरसोऽभवन्।**[५] अंगिरा

---

[१] **वि० वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशिआरपुर (पंजाब)**

[२] तै०सं० १-७-१०-१

[३] ऐ०ब्रा० ३-३४

[४] ऐ०ब्रा० ६-३४

[५] वही, ३-३४

को अंगारा कहना भी उसके अग्नि तत्त्व का ही द्योतक है। डॉ० लक्ष्मी नारायण ने अपने शोध-प्रबन्ध[१] "अंगिरा तथा अंगिरसों की समीक्षा" में प्रतिपादित किया है कि जिस प्रकार ब्राह्मण के अग्नि तत्त्व को अंगारों, उषाओं, नक्षत्रों आदि के ज्योतिर्मय पदार्थों में देखा जा सकता है, उसी प्रकार पिण्डाण्ड में भी अग्नितत्त्व को प्राणों के रूप में भी माना जा सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण[२] में ब्रह्म को वाक् का पर्याय माना है। इस प्रकार पुरोहित का अर्थ प्राण और वाक् हो जाता है।

पुरोहित का स्वरूप

ऐतरेय ब्राह्मण[३] के अनुसार पुरोहित तो साक्षात् वैश्वानराग्नि रूप है-

अग्निर्वा एष वैश्वानरः ....।

ऐतरेय ब्राह्मण में वैश्वानराग्नि का वर्णन तीन स्थलों पर हुआ है। प्रथम दो स्थलों पर संवत्सर एवं पुरोहित के पर्याय के रूप में एवं तृतीय स्थल पर अग्निहोत्र के प्रायश्चित्त प्रसंग में। पुरोहित में विद्यमान वैश्वानराग्नि अविकृत रूप में निवास करता है। पुरोहित में यह अग्नि इतना चैतन्य और प्रबल रहता है कि उसे केवल हांड-मांस का पुतला मात्र ही नहीं अपितु साक्षात् अग्नि रूप समझा जाता रहा है। यज्ञ का नायक होने के कारण भी पुरोहित को वैश्वानराग्नि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

"पौरोहित्य कर्म प्रशिक्षक"[४] ग्रन्थ में कहा गया है कि- "वह (पुरोहित) केवल कर्म-काण्ड का ही दिशा-निर्देशक या धार्मिक कार्य-कलाप का ही संचालक न होकर पूरे जीवन को अर्थात् प्रत्येक क्षण को समाज में गति एवं दिशा देता रहा है।" इस प्रकार पुरोहित भारतीय समाज व्यवस्था का एक अपरिहार्य अंग रहा है।

पुरोहित की आवश्यकता और उसका महत्त्व

ऐतरेय ब्राह्मण[५] के अनुसार देवता उस राजा का अन्न ग्रहण नहीं करते,

---

[१] दे० शोधप्रबन्ध ऋग्वेद के ऋषि, राजस्थान वि०वि० में अंगिरा तथा अंगिरसों की समीक्षा।

[२] ऐ०ब्रा० ४-२१ वागाहावो ब्रह्म

[३] ऐ०ब्रा० ८-२४ अग्निर्हवा वैश्वानरः पंचमे निर्यत्पुरोहितः

[४] पोहित्य कर्म प्रशिक्षक - संपा० १-५१

डॉ० सच्चिदानन्द पाठक, प्राक्कथन उ०प्र० संस्कृत संस्थान, लखनऊ

[५] ऐ०ब्रा० ८-२४ (न ह वा अपुरोहितस्य राज्ञो देवा अन्तमदन्ति।

जिसके पास पुरोहित नहीं होता। यज्ञ की इच्छा रखने वाले को पुरोहित की नियुक्ति करनी ही चाहिए। "देव मेरे यज्ञान्न को ग्रहण करें" जब ऐसा सोच करके राजा पुरोहित को नियुक्त करता है तो इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने लिए स्वर्ग को ले जाने वाली सीढ़ियाँ स्थापित करता है। इस उक्त कथन का आशय यही है कि पुरोहित में स्थित वैश्वानराग्नि से प्रेरित होकर राजा के अपने शरीर में स्थित वैश्वानराग्नि में भी संस्कार को पाकर उसमें स्वर्ग की ओर ले जाने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण[१] में मैत्रावरुण पुरोहित को यज्ञ का मन और हाता को वाणी कहकर भी यज्ञ के लिए पुरोहित की अनिवार्यता का कथन किया गया है। राजा के अभिषेक कर्म के लिए तो पुरोहित की परमावश्यकता बतायी गई है।[२] यज्ञ के रहस्य को समझ कर जो राजा यज्ञ सम्पन्न कराता है, उसी में उस राजा की प्रतिष्ठा होती है।

इस प्रकार वैदिक याज्ञिक कर्म-काण्ड में पुरोहित का बहुत बड़ा महत्त्व रहा है। जहाँ-जहाँ यज्ञ, वहाँ-वहाँ पुरोहित का होना अनिवार्य रहा है।

यज्ञों के विधि-विधानों के आविष्कार जिन-जिन ऋषियों के द्वारा रचे गये हैं वे मानवरूप एवं व्यक्ति-विशेष के ही प्रतीक रूप में वर्णित हुए हैं। कौषीतकि, मैत्रेय, सत्यकाम जावाल, उद्दालक आरुणि, जानश्रुतेय, गोपालायन, गोश्ल, रामभार्गवेय एवं राज्याभिषेक कराने वाले कई अन्य ऋषियों का पौरोहित्य कर्म को सम्पन्न कराने वाले पुरोहितों के रूप में वर्णन हुआ है। डॉ० नाथूलाल पाठक ने अपने शोधग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन[३] में राज्याभिषेक करने वाले पुरोहितों तथा कराने वाले राजाओं की यह सूची प्रस्तुत की है-

१- कवच के पुत्र द्वारा परीक्षित के पुत्र जनमेजय का।

२- भृगु के पुत्र-यवन द्वारा मनु के पुत्र शर्यात का।

३- वाजरत्न के पुत्र सोम शुष्मा द्वारा सत्राजित के पुत्र शतानीक का।

४- पर्वत और नारद द्वारा अम्बाष्ठ्य और अग्रसेन के पुत्र युधांश्रौष्ठि का।

५- कश्यप के द्वारा भुवन के पुत्र विश्वकर्मा का।

---

[१] ऐ०ब्रा० २-२८ (मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणो वाग्यज्ञस्य होता)।

[२] ऐ०ब्रा० ८-६

[३] ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन, ले० डॉ० नाथूलाल पाठक, परिशिष्ट, पृष्ठ २१२

६- वसिष्ठ के द्वारा पिजवन के पुत्र सुदास का।

७- अंगिरस के पुत्र संवर्त द्वारा अविक्षित के पुत्र मरुत्तम का।

८- अत्ति के पुत्र उदमय द्वारा अंग का।

९- ममता के पुत्र दीर्घतमा द्वारा दुष्यन्त के पुत्र भरत का इन्द्र की महाभिषेक विधि से राज्याभिषेक हुआ।

भारतीय राजतन्त्र में पुरोहित को सचिव, वैद्य, गुरु सभी कुछ माना गया। पुरोहित को निर्भय होकर सत्परामर्श देने कामना की गई है-

सचिव वैद गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय त्रास।
राजधर्म तन तीन कर बेगि होइहिं नास॥[१]

राज्य में युद्ध, महामारी, अकाल आदि किसी विपदा में तो राजपुरोहित का परमार्श दिशा-निर्देशक रहता ही है, शान्ति की स्थिति में भी राज्य के विस्तार एवं सुख-समृद्धि के लिए सदैव उसकी निर्णायक भूमिका रही है। सामाजिक कृत्यों, व्रतों, पर्वों, मुर्हुत विनिश्चय और प्रक्रिया के निर्धारण हेतु भी उसका परामर्श अपरिहार्य रूप में लिया जाता रहा है। इस प्रकार पुरोहित हमारे धर्म तन्त्र में सभी नित्य नैमित्तिक तथा काम्य कर्मों के लिए अग्नि की भांति जीवन में अग्रप्रकाश (मशाल) के सदृश रहा है।[२]

पुरोहित की योग्यता

ऐतरेय ब्राह्मण में कथन है कि जो तीन-तीन पुरोहितों (अग्नि, वायु और आदित्य) तथा तीन पुरोधाओं (पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ) को जानता है, वही पुरोहित बनने के योग्य है। इन सबका पूरा-पूरा ज्ञान रखने वाला पुरोहित जिसके पास होता है, उस राजा के अन्य राजा सहज में ही मित्र बन जाया करते हैं। अच्छे पूर्ण ज्ञाता पुरोहित के सत्यपरामर्श से वह शत्रुओं पर विजय पा लेता है। उसकी प्रजा एकमत होकर जिसके पूर्ण नियन्त्रण में रहती हुई अपने स्वामी राजा का अनुसरण करती है। उक्त प्रकार से ऐतरेय ब्राह्मण में पुरोहित के लिए अग्नि, वायु, आदित्य तथा

[१] रामचरितमानस - तुलसी

[२] पौरोहित्य कर्म प्रकाशन, प्राक्कथन, पृष्ठ ३

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ का पूरा-पूरा ज्ञान-विज्ञान जानने पर बल दिया है। पुरोहित का जीवन अपने यजमान के लिऐ अनुकरणीय होता है। अतः पुरोहित को भी अपनी दैनन्दिन जीवनचर्या को सात्त्विक, सदाचारपूर्ण एवं शुद्ध पवित्र रखना नितान्त आवश्यक है।

पुरोहित का वरण

ऐतरेय ब्राह्मण में पुरोहित का वरण करने के मन्त्र प्राप्त होते हैं।[१] तदनुसार राजा पुरोहित से कहता है- "मैं भूर्भुवः स्वः और ओ३म् हूँ, तुम भी वही हो, मैं स्वर्ग हूँ, तुम पृथिवी हो, मैं साम हूँ, तुम ऋक् हो। हम दोनों पुरों (नगरों व ग्रामों की (पतन के) महामय से रक्षा करें। तुम शरीर हो अतः मेरे शरीर की रक्षा करो इत्यादि।" डॉ० नाथूलाल के मत में[२] ये उपर्युक्त मन्त्र ऐतरेय ब्राह्मणकार द्वारा स्वयं रचे हुए प्रतीत होते हैं। इन मन्त्रों में पुरोहित और राजा के एकीकृत स्वरूप का भाव दिखाया गया है। पुरोहित आत्मा है और राजा शरीर। पुरोहित का शरीर भी राजा का शरीर है। अतः राजा को अपने शरीर की रक्षा करने के लिए कहा है। पुरोहित के शरीर की रक्षा की ओर जो संकेत है, इसकी पुष्टि ऋग्वेद के इस मन्त्र से हो जाती है-

स इद राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वमाजम्॥[३]

उक्त मन्त्र की व्याख्या में सायण ने लिखा है कि-

"इदमाद्यृक्त्रयं पुरोहितप्रशंसा इति ब्राह्मणम् (ऐ०आ० ८-२६)

यः बृहस्पतिं बृहतां महतां पालयितारं देवमुक्तलक्षणं पुरोहितं वा सुभृतं सुष्ठु हविः स्तोत्रादिना वा बिभर्ति।

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार भी ऋग्वेद (४.५०.१०) मन्त्र की व्याख्या में इस प्रकार लिखते हैं - "राष्ट्र में ब्राह्मण व क्षत्रिय सोम का (वीर्य का) रक्षण करने वाले हों। ऐसे ही ब्राह्मण व क्षत्रिय पुरोहित व राजा प्रजाओं को आनन्दित बना सकते हैं।[४]

---

[१] ऐ०ब्रा० ८.२७ (द्यौरहं पृथिवी त्वं सामहमृक्त्वम् ....)

[२] ऐ०ब्रा० एक अध्ययन, पृष्ठ १६३

[३] ऋग्वेद ४-५०-१० सायण का

[४] ऋग्वेद ४-५० व ११ पर हरिशरण सिद्धान्तालंकार का भाष्य

इससे अगले मन्त्र (ऋ० ४-५०-११) की व्याख्या में वे स्पष्ट लिखते हैं- "पुरोहित व राजा मिलकर राष्ट्र का रक्षण करें। वे प्रजाओं के उत्तम कार्यों का रक्षण करें।"

इस प्रकार उक्त ऋग्वेदीय मन्त्रों के द्वारा भी ऐतरेय ब्राह्मण, जो कि ऋग्वेद का ही ब्राह्मण है, उसमें प्रतिपादित पुरोहित के महत्त्व की पुष्टि हो जाती है।

पुरोहित का कार्य

पुरोहित राजा के लिए आहवनीय अग्नि सदृश है स्त्री गार्हपत्य और पुत्र अन्वाहार्य पचन अथवा दक्षिणागिन।[१] इस त्रिविध अग्नि में आहवनीय अग्नि का अति महत्त्व है। राजा जो कुछ भी पुरोहित के लिए करता है, वह मानों अग्नि अर्थात् आहवनीय अग्नि में यज्ञ करता है। इन तीनों अग्नियों के द्वारा क्षत्र-बल-राष्ट्र और प्रजा की प्राप्ति होती है। कदाचित् ये अग्नियाँ पुरोहित के द्वारा अर्जित न हों, तो यजमान स्वर्गलोक तथा क्षत्र, बल, राष्ट्र और प्रजा से वंचित हो जाता है। डॉ० नाथूलाल पाठक के मत से "क्षत्र, बल, राष्ट्र और प्रजा का अर्थ क्रमशः मानसिकोत्साह, सेना, देश और प्रजा किया जा सकता है।"[२]

भारतीय संस्कृति में देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण इन तीनों ऋणों से उऋण होने के लिये गृहस्थी के जीवन में, देवार्चन, लौकिक कर्म, सोद्देश्य सन्तानोत्पत्ति, संस्कार प्रक्रिया, ज्ञानार्जन एवं कर्मकाण्डदि कर्मों का विधान है। इन कृत्यों में पुरोहित की गरिमामयी भूमिका होती है। जिस प्रकार गुरु की भूमिका कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिए होती है, उससे भी अधिक भूमिका पुरोहित की होती है। डॉ० पाठक का कथन है कि- उसका (पुरोहित का) दायित्व विषयविशेष के अध्यापक की अपेक्षा कक्षा-अध्यापक जैसा है, जो अपने गुरुकुल के गुरु (आचार्य) की सम्पूर्ण भूमिकाओं को अपने में समाहित कर लेता है।

पुरोहित की शक्तियाँ

वैश्वानररूप पुरोहित में पाँच शक्तियाँ सर्वदा विद्यमान रहती हैं।[३] अग्नि जो

---

[१] ऐ०ब्रा० ८-२४

[२] ऐ०ब्रा० का एक अध्ययन, पृष्ठ १६२

[३] ऐ०ब्रा० ८-२४

कल्याणकारक है, वही कदाचित् कुपित हो जाए तो विघ्नकारक भी हो जाता है। पुरोहित के शरीर में पांच शक्तियाँ क्रमशः वाणी, पैरों, त्वचा, हृदय तथा उपस्थेन्द्रिय में निवास करती हैं।[१] कुपित होने पर वह अपनी इन शक्तियों के बल पर उग्र अग्नि के रूप में प्रकट हो सकता है। अतः राजा अन्यथा कुपित पुरोहित अपनी पांचों शक्तियों से यजमान राजा के विनाश का कारण बन सकता है। अपनी वाक् शक्ति से वह राजा को शाप भी दे सकता है और राजा के विरोध में प्रजाजनों को भड़का भी सकता है। अपने पैरों की शक्ति के द्वारा वह राष्ट्र में पदयात्रा करके राजा के विरोध में विद्रोह खड़ा कर सकता है। अपनी त्वचा की शक्ति से वह राजा में बचे-खुचे गुणों को भी अपने अन्दर खींच सकता है। पुरोहित की त्वचा में विलक्षण आकर्षण शक्ति होती है। हृदय के भावों में भी सूक्ष्म-कण तो रहते ही हैं, वे मनुष्यों का इष्ट और अनिष्ट दोनों करने में समर्थ होते हैं। अपनी उपस्थ शक्ति से वह असुरों को भी जन्म दे सकता है। अतः पुरोहित में विद्यमान वैश्वानराग्नि कुपित होकर विभिन्न शक्तियों के रूप में परिवर्तित होकर यजमान राजा का अनिष्ट कर सकने में समर्थ न हो, इसके लिए राजा को सदा सजग रहना चाहिए।[२]

पुरोहित की सन्तुष्टि के उपाय

ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि सन्तुष्ट पुरोहित अपने राजा को ऐसे सुरक्षा प्रदान करता है, जैसे समुद्र पृथिवी को घेर कर। राजा को चाहिए कि वह पुरोहित की सेवा और स्वागत में कोई कमी न रखे। पुरोहित के आने पर खड़ा होकर निवेदन करे- "भगवन् अब तक आप कहाँ विराज रहे? परिचारकों पुरोहित जी के लिए आसन लाओ" ऐसा कहकर राजा पुरोहित की वाणी में स्थित निरोधक शक्ति को शान्त करता है। चरण-प्रक्षालन करके उसके पैरों की विरोधक शक्ति को शान्त करे। अलंकार द्वारा पुरोहित की त्वक् शक्ति शान्त होती है। तर्पण द्वारा हृदय की शान्ति तथा सादर घर में निवास प्रदान करके उपस्थ शान्ति करे, यह सब करने पर सन्तुष्ट पुरोहित राजा को स्वर्ग ले जाता है। जो राजा इस रहस्य को जानकर ब्राह्मण पुरोहित

---

[१] अथर्ववेद का ब्रह्मजाया सूक्त और ब्राह्मण की गौ: अभय वेदालंकार, १९८६ वि०

[२] ऐ०ब्रा० ८-२४ व २५

को नियुक्त करता है, उस राजा की अपमृत्यु नहीं होती। वह राजा वृद्धावस्थापर्यन्त स्वस्थ रहकर पूर्ण आयु भोगता है। उसकी प्रजा भी सदैव उसके अनुकूल रहती है।

उक्त कथन का अभिप्राय इतना ही है कि राजा सदा पुरोहित की सेवा-सम्मान का पूरा ध्यान रखे। कहीं ऐसा न हो कि अनादर हो जाने पर पुरोहित में स्थित वैश्वानराग्नि क्षुब्ध होकर राजा को पतन के गर्त में न धकेल दे। क्योंकि कुपित, क्षुब्ध वैश्वानराग्नि ही सृष्टितन्त्र में विनाशक क्रियाएँ उत्पन्न कर देती है। ध्यान रहे कि-राष्ट्रगोपा पुरोहित राष्ट्र लोपा (विनाशक) भी हो सकता है।

ऐसी ही विकट परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भी यह कहा गया है कि-

पौरोहित्य कर्म अतिमन्दा।
वेद-पुरान स्मृति करि निन्दा॥

क्योंकि-

सचिव वैद गुरु तीन जा प्रिय वोलहिं भयत्रास
राज, धर्म, तन तीन कर वेगि होइहिं नास॥

अग्निर्वै सर्वा देवताः

डॉ० रामनारायणः शास्त्री[1]

ऐतरेयब्राह्मणस्य प्रथमपञ्चिकायाः प्रथमाध्यायस्य प्रथमायां कण्डिकायां '**अग्निर्वै सर्वा देवताः**'[2] इत्येकं वाक्यं वर्तते। वाक्यस्यास्य पोषकम् एकमपरं वाक्यं '**अग्निः सर्वा देवताः**'[3] द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्यायस्य तृतीयकण्डिकायां वर्तते। अपरञ्चैकं वाक्यम् '**अग्नेर्वा एताः सर्वास्तन्वो यदेता देवताः**'[4] तृतीयायाः पञ्चिकायाः प्रथमाध्यायस्य चतुर्थकण्डिकायां सम्प्राप्यते। '**अग्निर्वै सर्वा देवताः**' कथमित्यस्माकं विचारणीयं तथ्यम्। कथमग्निर्वै सर्वा देवता इत्यवबोधाय अग्निशब्दस्य देवशब्दस्य निर्वचनं प्रथमं चर्चनीयमिति वयं समीचीनं मन्यामहे। ब्राह्मणग्रन्थेषु, निरुक्ते, व्याकरणे सत्यार्थप्रकाशे च शब्दयोरनयोर्नैकानि निर्वचनानि समुपलभ्यन्ते। प्रथमन्तावदग्निः। यथाब्राह्मणम् – '**तद्वा एनमेतदग्रे देवानामजनयत तस्मादग्निरग्निर्ह वै नामैतद् यदग्निरिति। स जातः पूर्व प्रेयाय यो वै पूर्व एत्यग्र एतीति वै तमाहुः सो एवास्याग्निता।**'[5] '**स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्निरग्निर्ह वै तमग्निरित्याचक्षते परोक्षम्। परोक्षकामा हि देवाः।**'[6] यथा निरुक्तम् – **अग्निः कस्मात्? अग्रणीर्भवति,**

---

[1] **उपाचार्यः, राजकीयमहाविद्यालयः सिरोही, राजस्थानम्**

[2] ऐतरेय ब्राह्मणम् १.१.१ । माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् १,६,२,८ । ताण्ड्य ब्राह्मणम् ९,४,५ । गोपथ ब्राह्मणम् २.१.१२

[3] ऐतरेय ब्राह्मणम् २.१.३ । तैत्तिरीय ब्राह्मणम् १.४.४.१०

[4] ऐतरेय ब्राह्मणम् ३.१.४

[5] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् २.२.४.२

[6] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ६.१.१.११ । तुलनीयम् काण्व शतपथब्राह्मणम् ८,१,१,९

अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं नयति सन्नममानः। अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः, न क्नोपयति न स्नेहयति। त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिः। इतादक्ताद्, दग्धाद् वा नीतात्। स खल्वेतेरकारमादत्ते गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा नी परः।[१] यथा व्याकरणम् – गत्यर्थकाद् अगिधातोरौणादिकेन निप्रत्ययेन सिध्यति अग्निशब्दः। अङ्गति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा स अग्निः, वह्निः प्रसिद्धो वा।[२] यथासत्यार्थप्रकाशः - **अञ्चु गतिपूजनयोः, अग, अगि, इण् गत्यर्थका धातवः, एभिर्धातुभिः अग्निशब्दः सिद्ध्यति। गतेस्त्रयोऽर्थाः, ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः। योऽञ्चति, अच्यते, अगति, अङ्गति, एति सोऽयमग्निः। यो ज्ञानस्वरूपः सर्वज्ञः प्राप्यः प्रापणीयः पूजनीयश्चास्ति तस्मात् तस्य परमेश्वरस्य नाम 'अग्निः' अस्ति।**[३]

एतेषां सर्वेषां निर्वचनानामवगमनानन्तरं तथ्यमिदं स्पष्टतया आयाति यद् – यः सर्वेभ्यः प्राग् जायत उपस्थीयते वा सोऽग्निः। योऽग्रणीः, अग्रगन्ता, अग्रनेता स भवत्यग्निः। यो यज्ञे = श्रेष्ठतमे कर्मणि; कल्याणार्थिना सामुदायिकं योगक्षेममुद्दिश्य समुदायाङ्गतया क्रियमाणे कर्मणि प्रथममुपस्थीयते, उपस्थाप्यते वा सोऽग्निः। सर्वैः पूजनीयः, सत्करणीयः, यथायोग्यं यथावाश्यकञ्च सदुपयोजनीयो यः सोऽग्निः। ज्ञानस्वरूपः, सर्वज्ञः, स्वप्रकाशः, प्रकाशस्वरूपः परमपिता परमेश्वरोऽस्ति अग्निः। आध्यात्मिक पक्षे आत्मा (जीवात्मा-परमात्मा) ब्रह्म प्रजापतिः, वाक्प्राणमनांसि अग्निः। आधिदैविके रूपे सूर्यचन्द्रवाय्विन्द्रादित्यमरुत्पृथिव्यादयोऽग्निः। आधिभौतिके स्वरूपे-भोजनस्य पाचको दाहकः सर्वेषां प्रकाशकः सर्वेभ्यः प्रकाशोष्मोर्गुष्णता गतीनां दाता वर्ततेऽग्निः।

देवः = देवता। यथा ब्राह्मणम् – ते देवा दिवमभिपद्यासृज्यन्त तद् देवानां देवत्वं यद् दिवमभिपद्यासृज्यन्त, तस्मै ससृजानाय दिवेवास तद्वेव देवानां देवत्वं

---

[१] निरुक्तम् ७.४.१

[२] धातुपाठ भ्वादिगणः ८८ । उणादिसूत्रपाठः ४.५१

[३] सत्यार्थप्रकाशः, प्रथमसमुल्लासः, पृष्ठम् १३-१४

यदस्मै ससृजानाय दिवेवास।[1] दिवा वै नोऽभूदिति तद् देवानां देवत्वम्।[2] तस्मै मनुष्यान्त्ससृजानाय दिवा देवत्रा अभवत्, तदनु देवानसृजत तद् देवानां देवत्वम्।[3] दिवा देवानसृजत नक्तमसुरान्, यद् दिवा देवानसृजत तद् देवानां देवत्वम्।[4] यथा निरुक्तम् – देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा। यो देवः स देवता।[5] यथाव्याकरणम् – क्रीडादिदशार्थवताद् द्विधातोरच् प्रत्यये कृते देवशब्दः सिद्ध्यति[6], स्वार्थे तल् प्रत्ययेन देवता।[7] यथा सत्यार्थप्रकाशः - (दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) अस्माद् धातोः देवशब्दः सिध्यति। (क्रीडा) यः शुद्धं जगत् क्रीडयति (विजिगीषा) धार्मिकाणां विजयाय व्यवहरति सर्वाणि साधनोपसाधनानि ददाति, (द्युति) स्वयं द्योतमानः सन् सर्वान् द्योतते (स्तुति) स्तवनीयः, (मोद) स्वयमानन्दस्वरूपोऽन्याँश्च सर्वान् मोदयते (मद) मदोन्मत्तान् ताडयति (स्वप्न) सर्वेषां शयनाय रात्रेः प्रलयस्य च कारकः (कान्तिः) कमनीय (गतिः) ज्ञानस्वरूपश्चास्ति तेन कारणेन तस्य परमेश्वरस्य नाम देवो विद्यते। अथवा यो दीव्यति क्रीडति स देवः, अथ च यः स्वस्मिन् स्वरूपे स्वयमेव आनन्देन क्रीडति, कस्यापि साहाय्यं विना क्रीडावत् सहजतया सर्वं जगत् निर्माति; सर्वासां क्रीडानामाधारो वर्तते स देवः। यो विजिगीषते, व्यवहारयति, यश्चराचरं जगद् द्योतयति, यः स्तूयते, यो मोदयति, यो माद्यति, यः स्वापयति, यः कामयते काम्यते वा, यो गच्छति गम्यते वा स देवः। एभिः सर्वैर्गुणैस्तस्य परमेश्वरस्य संज्ञा देवो वर्तते।[8]

---

[1] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ११.१.६.७

[2] तैत्तिरीय ब्राह्मणम् २.२.९.९

[3] तैत्तिरीय ब्राह्मणम् २.३.८.३

[4] षड्विंश ब्राह्मणम् ५.१

[5] निरुक्तम् ६.४.२

[6] धातुपाठ दिवादिगण १ । अष्टाध्यायी ३.१.१३४

[7] अष्टाध्यायी ५.४.२७

[8] सत्यार्थप्रकाशः, प्रथमसमुल्लासः, पृष्ठम् १७,१८

शब्दस्य एतेषां सर्वेषां निर्वचनानामालोके तथा च ‘अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता’[१] इति यजुषालोके यानि कान्यपि तत्त्वानि देवशब्देन ज्ञायन्ते व्यवह्रियन्ते च तानि सर्वाणि ब्राह्मणग्रन्था: संहिताश्च अग्निं कथयन्ति। एतस्मात् कथ्यते अग्निर्वै सर्वा देवताः। यथा निदर्शनानि – **अग्निरवै ब्रह्म।**[२] **अग्निरेव ब्रह्म।**[३] **अग्निर्ब्रह्म।**[४] **अग्निरेव सविता।**[५] **आत्मैवाग्निः।**[६] **आत्मा वा अग्निः।**[७] **पुरुषोऽग्निः।**[८] **पुरुषो वा अग्निः।**[९] **प्रजापतिरेषोऽग्निः।**[१०] **प्रजापतिर्वा अग्निः।**[११] **प्रजापतिरग्निः।**[१२] **एष वै प्रजापतिर्यदग्निः।**[१३] **अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता स प्रजापतिः।**[१४] **प्राणा अग्निः।**[१५] **प्राणो वा अग्निः।**[१] **तदग्निर्वै प्राणः।**[२] **ते वा एते प्राणा**

---

[१] यजुर्वेद १४.२०

[२] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ८.५.१.१२

[३] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् १०.४.१.५ । गोपथ ब्राह्मणम् १.५.१५

[४] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ३.२.२.७

[५] गोपथ ब्राह्मणम् १.१.३३

[६] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ६.७.१.२० । १०.१.२.४

[७] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ७.३.१.३

[८] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् १०.४.१.६

[९] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् १४.९.१.१५ । काण्व शतपथब्राह्मणम् १७.६.२.१२ । बृहदारण्यकोपनिषद् ६.२.१२

[१०] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ६.५.३.७ । ६.८.१.४ । का०शत०ब्रा० ८.५.३.५; ८.८.१.२

[११] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् २.३.३.१८

[१२] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ६.२.१.२३ । ६.५.३.९ । ७.२.२.६ । काण्व ८.२.१.१५ । ८.५.३.७ । ९.१.२.१३

[१३] तैत्तिरीय ब्राह्मणम् १.१.५.५

[१४] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् २.५.१.८ । ३.९.१.६ । तुलनीयम् का०शत०ब्रा० ४.९.१.४

[१५] मा०शत०ब्रा० ६.३.१.२१,२३ । ६.८.२.१० । का०शत०ब्रा०८.३.१.१७ । ८.८.१.७

एव यदग्नय:।[3] वायुर्वा अग्नि:।[4] वायुर्वा अग्ने: स्वो महिमा।[5] यो वै रुद्र: सोऽग्नि:।[6] अग्निर्वै रुद्र:।[7] रुद्रोऽग्नि:।[8] एष वै रुद्रो यदग्नि:।[9] पर्जन्यो वा अग्नि:।[10] असौ वा आदित्य एषोऽग्नि:।[11] असौ वा आदित्योऽग्निर्वसुमान्।[12] वागेवाग्नि:।[13] वाग्वा अग्नि:।[14] या वाक् सोऽग्नि:।[15] या सा वाग् अग्नि: स:।[16] या सा वागासीत् सोऽग्निरभवत्।[17] यो वै वरुण: सोऽग्नि:।[18] यो वा अग्नि: स वरुण:।[19] एभि: प्रमाणवचोभरग्नि: सर्वा देवता इति प्रथमा विचारसरणि:।

परं कथं रुद्रवरुणमित्रादय: सर्वे देवा अग्निरिति द्वितीयश्चर्चनीयो बिन्दु:। अत्र

---

[1] मा०शत०ब्रा०२.२.२.१५ । ९.५.१.६८ । काण्व शतपथब्राह्मणम् ११.७.१.५५

[2] जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणम् ४.२२.११

[3] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् २.२.२.१८

[4] ऐतरेय ब्राह्मणम् २.५.२

[5] कौषीतकिब्राह्मणम् ३.३

[6] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ५.२.४.१३

[7] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ५.३.१.१० । ६.१.३.१० । का०शत०ब्रा०८.१.३.८

[8] ताण्ड्य ब्राह्मण १२.४.२४

[9] तैत्तिरीय ब्राह्मणम् १.१.५.८,९ । १.१.६.६ । १.१.८.४

[10] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ६.१.३.१५ । काण्व शतपथब्राह्मणम् ८.१.३.१२

[11] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ६.४.३.९ । ६.४.१.११ । काण्व शतपथब्राह्मणम् ८.३.१.९

[12] तैत्तिरीयारण्यकम् ७.५.१० । तुलनीयम् मैत्रायणी संहिता २.१.२

[13] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ३.२.२.१३

[14] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ६.१.२.२८ । काण्व शतपथब्राह्मणम् ८.१.२.२५ । जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणम् ३.२.५

[15] गोपथब्राह्मणम् २.४.११ ।

[16] जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणम् १.२८.३

[17] जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणम् २.२.१

[18] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ५.२.४.१३

[19] ऐतरेय ब्राह्मणम् ६.४.१०

द्वयमपि शतपथब्राह्मणं ब्रूते यदेतेन कारणेन देवा अग्निरिति। तद् यत्रैतत् **प्रथमं समिद्धो भवति, धूप्यत इव तर्हि हैष भवति रुद्रः। अथ यत्रैतत् प्रदीप्ततरो भवति, तर्हि हैष भवति वरुणः। अथ यत्रैतत् प्रदीप्तो भवति, उच्चैर्धूमः परमया जूत्या बल्बलीति तर्हि हैष भवतीन्द्रः। अत्र यत्रैतत् प्रतितरामिव तिरश्चीवाऽर्चिः संशाम्यतो भवति, तर्हि हैष भवति मित्रः। अथ यत्रैतदङ्गाराश्चाऽऽकाश्यन्त इव, तर्हि हैष भवति ब्रह्म।**[१] **स यत्र ह वा एष (अग्निः) प्रथमं सम्प्रधूप्य प्रज्वलति तद्ध वरुणो भवति। अथ यत्र सम्प्रज्वलितो भवत्यवरेणेव वर्षिमाणं तद्ध रुद्रो भवति। अथ यत्र वर्षिष्ठं ज्वलति तद्धेन्द्रो भवति। अथ यत्र नितरामर्चयो भवन्ति तद्ध मित्रो भवति। अथ यत्राङ्गारा मल्मलायन्तीव तद्ध ब्रह्म भवति।**[२] **रुद्रोऽग्निः। रोदयतीति रुद्रः, रोदेर्णिलुक्**[३] च इति वयं सर्वे जानीम एव। एतत्तु अग्नेः रौद्ररूपमिति प्रसिद्धं परं रुद्रोऽग्नेः शान्तरूपं मित्ररूपमपि भवतीति वयं विचारयामः। 'रौतीति रुः' 'रु शब्दे' धातोः क्विन् प्रत्ययः।[४] रौ = शब्दे आह्वाने सति य आह्वानकर्तुः समीपं द्रवति गच्छति द्रवी भवति तस्य रोगादिसन्तापनिवारणाय स इन्द्रः, भिषग् वैद्यो वा।[५] रु उपपदे द्रुधातोर्डः प्रत्ययः।[६] अस्ति ऋग्वेदे द्वितीये मण्डले रुद्रदेवताकं त्रयस्त्रिंशत्तमं सूक्तम्। तत्र रुद्रः सन्तापरोगपापनिवारकत्वेन भिषग्रूपेण वर्णितस्तस्यैकस्या ऋचोंऽशः - '**क्व स्य ते रुद्र मृडयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।**[७] एवं यदा दुष्टादिदमनकारकस्तदा रुद्रो रोदयतेः, यदा चौषधीभी रोगिणः सन्तापशमनादिकारकस्तदा रु उपपदे द्रवतेर्रुद्रः। इत्थमग्नेः रुद्रत्वेन शान्ताशान्तरुपे

[१] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् २.३.२,९-१३

[२] काण्व शतपथब्राह्मणम् ३.१.१.१

[३] धातुपाठ अदादिगणः ६० ।उणादिसूत्रपाठः २,२२

[४] उणादिसूत्रपाठः ४.५४ ।बाहुल्येन

[५] २.२ सूत्रे पाणिनीयप्रयोगदीपिकावृत्तिः ।

[६] उणादिसूत्रपाठः २.२ सूत्रे पाणिनीयप्रयोगदीपिकावृत्तिः ।

[७] ऋग्वेद २.३३.७

दृग्गोचरी भवतः। **अग्निर्हिमस्य भेषजमिति** तु प्रसिद्धमेव।[1] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणे अग्नेः शान्ताशान्तरूपाणां वर्णनं विद्यते। अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनाम्पती रुद्रोऽग्निरिति तान्यस्याऽशान्तान्येवेतराणि नामान्यग्निरित्येव शान्ततममिति[2] द्वितीया विचारसरणिः।

त्रयस्त्रिंशदेव देवाः सन्तीति निश्चप्रचं संहितासु ब्राह्मणग्रन्थेषु च बहुत्र श्रूयते।[3] अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इत्येकत्रिंशद् एतत्तु सर्वमान्यमेव; प्रजापतिश्च वषट्कारश्चेति क्वचित्?[4] **इन्द्रश्च प्रजापतिश्चेत्यन्यत्,** [5] **वाग् द्वात्रिंशी स्वरश्च त्रयस्त्रिंश इति गोपथे ब्राह्मणे**[6] श्रूयते द्यावापृथिव्यौ – इति माध्यन्दिनशतपथब्राह्मणम्।[7]

वेदविज्ञानमाहोस्विद् वैदिकविज्ञानमाश्रित्य विचारयामस्तदा अग्निवाय्वादित्यरूपेण पृथिवीस्थानीयोऽन्तरिक्षस्थानीयोद्युस्थानीयत्वेन त्रय एव देवा भवन्ति। '**तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः।**[8] वस्तुतस्तु त्रयोऽपीमे घनतरलविरलभेदेनाग्निरेव। यजुर्वेद इमाँस्त्रीनपि ध्रुवधरुणधर्त्रान् कथयति। 'ध्रुवमसि पृथिवी दृंह। धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंह। धर्त्रमसि दिवं दृंह।'[9] एतेषु ध्रुवधरुणधर्त्रेषु रूपेषु

---

[1] यजुर्वेद २३.४६

[2] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् १.७.३.७

[3] यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः। यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे । तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः - अथर्ववेद १०.७.१३,२३,२७

[4] ऐतरेय ब्राह्मणम् २.२.८ । २.५.५ तैत्तिरीय संहिता ३.५.२.३

[5] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ११.६.३.५ । कौषीतकिब्राह्मणम् १२.६ । माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् १४.६.९.३

[6] गोपथब्राह्मणम् २.१.१३

[7] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ४.५.७.२

[8] निरुक्तम् ७.२.१

[9] यजुर्वेद १.१७-१८

घनावस्थामापन्नोऽग्निरग्निरेव निगद्यते स चास्ति पृथिवीस्थान:। तरलावस्थां प्राप्तोऽग्निर्वायु: कथ्यते सोऽन्तरिक्षस्थान:। विरलावस्थाऽङ्गतोऽग्निरादित्य उच्यते स च विद्यते द्युस्थान:। ध्रुव = घनावस्थावानग्निरष्टसु भागेषु विभज्यते त एवाष्टौ भागा 'अष्टौ वसव:' कथ्यन्ते। धरुण = तरलावस्थाप्राप्तोऽग्निर्वायुरूपेण एकादशप्रकारको भवति, त एवैकादशरुद्रा निगद्यन्ते। धर्त्र = विरलावस्थापन्नोऽग्निर्द्वादशसु भागेषु विभक्तो भवति, एत एव द्वादश भागा द्वादशादित्या: प्रोच्यन्ते। इन्द्र: प्रजापतिश्च, वषट्कारश्च प्रजापतिश्च, द्यावापृथिवीव्यौ वा, वाक्स्वरौ चैते सर्वे त्रयस्त्रिंशद् भवन्तोऽप्येक एव।[१] ऋग्वेदेऽपीदं प्राप्यते तथ्यम् –

'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु:॥[२]

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध... एकं वा इदं विबभूव सर्वम्॥'[३]

कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच। कतमे ते त्रयश्च त्री च शता च त्रयश्च त्री च सहस्रेति। स होवाच। महिमान एवैषामेते।[४] **एतावतैव कथ्यते अग्निर्वै सर्वा देवता:।**[५] **अग्नि: सर्वा देवता:।**[६] **सर्वदेवत्योऽग्नि:।**[७] **अग्नेर्वा एता:**

---

[१] पं. मोतीलालशास्त्रिकृत हिन्दीविज्ञानभाष्य शर्करासम्भार माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण २.१.१.८ पृ. २४-२५

[२] ऋग्वेद १.१६४.४६ । अथर्ववेद ९.१०.२८

[३] ऋग्वेद ८.५८.२

[४] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण ११.६.३.४-५ । १४.६.९.२-३

[५] ऐतरेय ब्राह्मणम् १.१.१ । माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ३.१.३.१ । ताण्ड्य ब्राह्मणम् १८.१.८ । षड्विंश ब्राह्मणम् ४.१

[६] ऐतरेय ब्राह्मणम् २.१.३ । तैत्तिरीय ब्राह्मणम् १.४.४.१० । माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् १.६.३.१० । तैत्तिरीय आरण्यक ५.४.५ । तैत्तिरीय संहिता २.२.९.१,३ । ३.१.१.२ । ५.५.१.४

[७] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ६.१.२.२८

सर्वास्तन्वो यदेता देवताः।[१] अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा।[२] सर्वेषामु हैष देवानामात्मा यदग्निः।[३] सर्वतो मुखोऽयमग्निः[४] ॥ इति ॥

[१] ऐतरेय ब्राह्मणम् ३.१.४

[२] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् १४.३.२.५

[३] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् ७.४.१.२५ । ९.५.१.६ । काण्व शतपथब्राह्मणम् ९.३.३.१५ ९.३.३.१५ । ११.७.१.३

[४] माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् २.६.३.१५

ऐतरेय ब्राह्मण : एक परिचय

श्रीवत्स शास्त्री[1]

ब्रह्म, ब्राह्मण :

बृहि वृद्धौ धातु से 'मनिन्' प्रत्यय करने से निष्पन्न ब्रह्मन् (ब्रह्म) शब्द संस्कृत साहित्य में अनेकार्थवाची है। ब्रह्म का स्वरूप बृहत् होने से 'बृहत्वाद् ब्रह्म' कहा जाता है। सामान्यतया इसका अर्थ आत्मतत्त्व, वेद व शक्ति लिया जाता है। ब्राह्मणों के सन्दर्भ में इसका अर्थ प्रार्थना भी है। आद्युदात्त होने पर स्तुति, प्रार्थनादि अर्थ और अन्तोदात्त होने पर प्रार्थना करने वाला अर्थ होता है। संस्तुति समूह भी ब्रह्मन् कहा जाता है। स्तुति समूह का अधिठातृ देवता ब्रह्मणस्पति कहलाता है संस्तुतिवाचक या स्तुतिपरक होने से मन्त्र भी ब्रह्म कहे जाते हैं।[2] मन्त्ररूपात्मक ब्रह्मन् का यज्ञ के विविध कर्मों में विनियोग होने से, इस विनियोग शास्त्र का नाम ब्राह्मण होता है। यज्ञ मन्त्रमय होते हैं। अतः कई बार यज्ञ को भी ब्रह्म कह दिया जाता है। इस प्रकार यज्ञसम्बन्ध से भी इन ग्रन्थों को ब्राह्मण कहा जाता है। मन्त्रसम्बन्ध से वेद भी ब्रह्म कहे जाते हैं।[3] कुछ विद्वान् '**ब्राह्मणेन प्रोक्तं ब्राह्मणम्**' भी अर्थ करते हैं (**तेन प्रोक्तम्**, पा० ४-३-१०१; **प्रोक्ताल्लुक्**, पा० ४-१-४६)। इस प्रकार ब्रह्मन् का अर्थ स्तुति, मन्त्र एवं यज्ञ एवं ब्रह्म से सम्बन्धित होने से विनियोक्ता ग्रन्थ ब्राह्मण कहे जाते हैं। मूलतः मन्त्र (ब्रह्म) ही वेद है।

मन्त्र एवं ब्राह्मण का वेदत्व :

---

[1] **संस्कृत विभाग, मोतीलाल नेहरु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

[2] ब्रह्म वै मन्त्रः। शतपथ ७.१.१.५

[3] वेदो ब्रह्म - जैमिनीय उपनिषद् ४.२५.३

वैदिक विद्वानों में यह एक विवाद का विषय है कि ब्राह्मण ग्रन्थों का वेदत्व है कि नहीं। वैदिक वाङ्मय के अनेक प्राचीन आचार्य दोनों को वेद मानते दिखते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य-

१- **मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते** - बौधायन गृह्यसूत्र - २-६-२
२- **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्** : आपस्तम्ब - यज्ञ परिभाषा ९-९-३९
३- सत्याषाढ श्रौतसूत्र : १-१-७ में यही वाक्य है।
४- कात्यायन का प्रतिज्ञापरिशिष्ट - सूत्र ९ में यही वाक्य है।
५- कुमारिल भट्ट : तन्त्रवार्तिक : १-३-१० - **मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद इति नामधेयं षडंगमेक इति।**
६- **वेद शब्देन ऋग्यजुःसामानि ब्राह्मणसहितान्युच्यन्ते** - मनुस्मृतिभाष्यकार मेधातिथि : मनु० २-६
७- **मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः** - सायण, ऋग्वेदादि० भूमिका, पृष्ठ १४; वाराणसी, १९७२
८- जैमिनि ने मीमांसा सूत्र २-१-३२-३३ में यही कहा है।
९- जैमिनि न्यायमाला विस्तार (२.१.२५) में माधवाचार्य ने भी यही माना है।
१०- **मन्त्रब्राह्मणयोराहुर्वेद शब्दं महर्षयः** - सर्वानुक्रमणीवृत्ति की भूमिका में षड्गुरु शिष्य।
११- **आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च** - कौशिकसूत्र १-३

यहाँ एक सरल सा प्रश्न सब के मन में उठता है कि यदि दोनों का नाम वेद है तो सब को बार-बार क्यों कहना पड़ता है कि मन्त्र-ब्राह्मण का नाम वेद है? ऐसा कहने की विवशता से यह सिद्ध होता है कि बात कुछ और ही है। गोपथ ब्राह्मण में एक आंख खोल देने वाली पंक्ति आयी है जिसमें बताया गया है कि सभी वेद किस स्वरूप में निर्मित हुए हैं। इस पंक्ति में निर्दिष्ट अन्य अप्राप्य या अचिह्नित शास्त्र भी विचारणीय हैं-

"इमे सर्वे वेदा निर्मिताः, सकल्पाः, सरहस्याः, सब्राह्मणाः, सोपनिषत्काः, सेतिहासाः, सान्वाख्यानाः, सपुराणाः, सस्वराः, ससंस्काराः, सनिरुक्ताः, सानुशासनाः, सानुमार्जनाः, सवाकोवाक्याः - गो०ब्रा० १-२-९

ब्राह्मण स्वयं कह रहा है कि वेद और ब्राह्मण का स्वरूप भिन्न है। वेद और ब्राह्मण ग्रन्थ पृथक् हैं।

कृष्ण यजुर्वेद की शाखाओं में, ब्राह्मणों में बहुत मिश्रित रूप है। कहीं मन्त्र और ब्राह्मण अलग-अलग हैं तो कहीं एक ही कण्डिका में मन्त्र का अंश देते हुए ब्राह्मण भाग शुरु हो जाता है। मन्त्र भाग में ब्राह्मण एवं ब्राह्मण भाग में मन्त्र का समावेश स्पष्ट देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में सायण को भी स्पष्टीकरण देना पड़ा। **"यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वान्मन्त्रा एवादौ समाम्नाताः।**[१] जो लोग स्पष्ट रूप से ब्राह्मण की व्याख्यानादि को ग्रन्थ मानते हैं, वे भी द्रष्टव्य हैं-

१- **ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यान ग्रन्थः** - तै० संहिताभाष्यकार भट्टभास्कर - १/५

२- **मन्त्राणां स्तुतिनिन्दाव्याख्यानविनियोगादिग्रन्थो ब्राह्मणम्** : राजशेखर - काव्य मीमांसा-२

३- **ब्रह्मणां वेदानाम् इमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि** : स्वामी दयानन्द, वैदिक वाङ्मय का इतिहास (ब्राह्मण, आरण्यक), भगवददत्त, पृष्ठ १; १९३५

इस विषय में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जो विद्वान् ब्राह्मणों को वेद मानने पर जोर दे रहे हैं, उनका अभिप्राय अपने सूत्र साहित्य वेदमयता में समाहित करना है। सूत्रसाहित्य कर्मकाण्ड केन्द्रित हैं और इनका आधार ब्राह्मणग्रन्थ हैं। ब्राह्मणों को वेद मान लेने से मीमांसादि सूत्र साहित्य की प्रामाणिकता सिद्ध होती है अन्यथा लोग इन कर्मकाण्डों को अवैदिक मानकर उपेक्षा कर सकते थे। मीमांसादि

[१] तैत्तिरीय संहिता भाष्य, पृष्ठ ७, आनन्दाश्रम सं० ग्रन्थावली, १९६०

समस्त सूत्र साहित्य में उपलब्ध कर्मकाण्ड को वैदिक सिद्ध करने का आग्रह परिलक्षित होता है। अन्यथा ब्राह्मणग्रन्थों के वाक्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी, जिनमें ब्राह्मणग्रन्थ स्वयं मन्त्र खण्ड को आधार बनाकर उसकी व्याख्या करते प्रतीत होते हैं। '**यज्ञेन यज्ञमयजन्त**' के प्रसंग में ऐतरेय ब्राह्मण कहता है - **यज्ञेन वै तद्देवा यज्ञमयजन्त .... यदग्निनाग्निमयजन्त**।[१] ब्राह्मण के इस कथन को यास्क भी प्रमाणित करते हैं - **यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः अग्निना अग्निमयजन्त देवाः। अग्निः पशुरासीत् तमालभन्त। तेनायजन्त इति च ब्राह्मणम्**।[२]

इसी तरह '**हंसः शुचिषत्०**' (ऋक् - ४-४०-५) के सन्दर्भ में 'दुरोहण' का व्याख्यान मिलता है- "**दूरोहणं रोहति। स्वर्गो वै लोको दूरोहणम्। स्वर्गमेव तल्लोकं रोहति य एवं वेद। .... कश्चिद्वा अत्र गच्छति। स यद् दूरोहणं रोहत्येतमेव तद्रोहति। हंसवत्या रोहति। हंसः शुचिषदित्येष वै हंसः शुचिषत्** इत्यादि।[३]

इस प्रकार भूरिशः मन्त्रों या मन्त्रांशों की यहाँ व्याख्या की गयी है। सैकड़ों की संख्या में पाये जाने वाले वैदिक शब्दों के निर्वचन भी ब्राह्मण ग्रन्थों के व्याख्या ग्रन्थ होने में प्रमाण हैं।

ग्रन्थ के रूप में ब्राह्मण शब्द का प्रयोग एवं अनुब्राह्मण : ब्राह्मण शब्द ग्रन्थविशेष के रूप में कब से प्रयुक्त होने लगा यह भी एक जिज्ञास्य विषय है। वैसे तो किसी न किसी रूप में ब्राह्मणग्रन्थों का प्रतिपाद्यस्वरूप संहिताकाल में भी था। सर्वप्रथम तैत्तिरीय संहिता में संहिताखण्ड और ब्राह्मणखण्ड का मिश्रितरूप प्राप्त होता है। तैत्तिरीय संहिता का यह वाक्य "**एतद् ब्राह्मणान्येव पञ्चहवींषि**"[४] उक्त कथन का प्रमाण है। ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण में भी ग्रन्थ के लिए ब्राह्मण शब्द

---

[१] ऐ०ब्रा० ३.५

[२] निरुक्त १२.४१

[३] ऐ०ब्रा० १८.६

[४] तैत्तिरीय संहिता - ३.७.११, तैत्तिरीय ब्रा०- १.७.१.१

प्रयोग मिलता है।[१] यास्क के निरुक्त में भी अनेकशः "**इति च ब्राह्मणम्, इति विज्ञायते, इति याज्ञिकाः**" कहकर ब्राह्मण ग्रन्थों के वचन उद्धृत किये गये हैं।[२] ब्राह्मण शब्द का प्रयोग प्रायः नपुंसकलिंग में दिखाई देता है। परन्तु विष्णुधर्मोत्तर पुराण में पुल्लिंग में भी इसका प्रयोग दिखता है। "**य इमे ब्राह्मणः प्रोक्ताः**"[३] यह महाभारत का वाक्य भी पुल्लिंग में ब्राह्मण को दिखा रहा है। वैदिक वाङ्मय, पाणिनि, यास्क आदि में ग्रन्थ के रूप में ब्राह्मण शब्द नपुंसकलिंगी है।

ब्राह्मणग्रन्थों के प्रसंग में कुछ सन्दर्भों को अनुब्राह्मण कहा गया है। पाणिनीयाष्टक से ज्ञात होता है कि अनुब्राह्मण को पढ़ने या जानने वाले को अनुब्राह्मणी कहते हैं।[४] यहाँ कुछ व्याख्याकारों ने "**ब्राह्मणसदृशोऽयं ग्रन्थोऽनुब्राह्मण्**"[५] कहा है। कुछ एक 'आर्षेय ब्राह्मण' को अनुब्राह्मण कहा है। ताण्ड्यब्राह्मण के अंश या परिशिष्ट को भी अनुब्राह्मण कहा गया है- "**ताण्ड्यांशभूतानि, ताण्ड्यपरिशिष्टभूतानि वा अनुब्राह्मणानि वा अपराण्यपि सप्ताधीयन्ते च**।"[६] इससे यह भी पता चलता है, कुछ अन्य छोटे ब्राह्मण भी होंगे, जो अनुब्राह्मण कहे जाते थे। सायण ने तैत्तिरीयब्राह्मण-भाष्य में प्रत्येक अनुवाक के ब्राह्मणों को राजसूय का अनुब्राह्मण लिखता है- "**अथ राजसूयस्यानुब्राह्मणम्**"[७]। ऐसा भी प्रतीत होता है कि कल्पसूत्रकारों ने जो ब्राह्मणभाग उद्धृत किये हैं, उन्हें भी अनुब्राह्मण कहा जाता था। किसी किसी ने संभावना व्यक्त की है कि आरण्यक ग्रन्थों को भी सम्भवतः अनुब्राह्मण कहा जाता होगा।

ऐतरेय - संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, गृह्यसूत्र :

---

[१] ऐत० २५/८, शतपथ० ४.६.९.२०

[२] ३.४, ४.४, ७.५, २.५, २.३, ४.१

[३] ११/९

[४] ४.२.६१

[५] काशिका - ४.२.६२

[६] निरुक्तालोचन, पृष्ठ ९७, कलकत्ता १९०७

[७] तै०ब्रा० १.६.१

वैदिक वाङ्मय के अनेक ग्रन्थों के लुप्त हो जाने से अनेक विषयों में दुविधा की स्थिति है। ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यक तो उपलब्ध हैं, परन्तु ऐतरेय संहिता और ऐतरेय गृह्यसूत्र का उल्लेख मिलने पर भी ये ग्रन्थ अब अनुपलब्ध हैं। ये ब्राह्मण और आरण्यक इस बात के प्रमाण हैं कि संहिता भी अवश्य रही होगी जो ऋग्वेद की एक शाखा रही होगी या थी। ऐतरेय संहिता के विषय में कुछ संकेत द्रष्टव्य हैं-

(क) आश्वलायन श्रौतसूत्र - १-३ - 'ऐतरेयिणः'

(ख) निदानसूत्र ५-२; ऐतरेयिणाम्

(ग) आ०श्रौ०सू० का व्याख्याकार गार्ग्य नारायण - "**ऐतरेयिणः शाखाविशेषाः**" - आश्व०श्रौ०सू० १-३

(घ) शांखायन श्रौतसूत्रभाष्य - वरदत्तसुत - ऐतरेयिणाम्

(ङ) मनुस्मृति भाष्य में मेधातिथि ने ऋग्वेद की इक्कीस शाखाओं में ऐतरेय शाखा का उल्लेख किया है - "**एकविंशतिबाह्वृच्या आश्वलायन ऐतरेयादिभेदेन।** मनु० २-६

आश्वलायन गृह्यसूत्र की टीका में हरदत्त ने ऐतरेयों के वचन का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सप्तपदी मन्त्रों में सब जगह 'भव' शब्द जोड़ना चाहिए - "**ऐतरेयिणां च वचनं भवादि सर्वत्र समानम्**"[१]।

ऐतरेय ब्राह्मणः

'ऐतरेय' नाम के सन्दर्भ में विविधमत दिखाई देते हैं।

इतरा का पुत्र भी ऐतरेय हो सकता है और ऐतरेय शाखा से सम्बन्ध के कारण ऐतरेय ब्राह्मण का यह नाम पड़ा हो। अवेस्ता में ऋत्विज् के अर्थ में एथ्रेय शब्द का प्रयोग मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार होतृ नामक ऋत्विज् सम्पादनीय कार्यकलापों को सम्पादित करता है। यहाँ होता के तीन मुख्य भेद भी बताये गये हैं-

१- होता = होतृ ऋत्विजों में प्रधान

२- होत्रक = छोटा होता

---

[१] आश्व०गृ०सू० १.६.२०

३- होतृ शंसिनः = होतृ मन्त्रों का उच्चारण करने वाला।

इतरा के पुत्र ऐतरेय के लिए 'महिदास ऐतरेय' शब्द भी मिलता है। इसका उल्लेख ऐतरेय आरण्यक (२.१.७ तथा २-१-३-८) में भी मिलता है। छान्दोग्योपनिषद् में आचार्य शंकर का वाक्य द्रष्टव्य है- "**एतद् ह स्म वै तद् विद्वानाह महीदास ऐतरेयः**" पर "**महिदासो नामत इतराया अपत्यम् ऐतरेयः**"[१]। सायण ने यहाँ पर एक कथा को उद्धृत किया है कि किस प्रकार महिदास को ऐतरेय ब्राह्मण व आरण्यक की प्राप्ति हुई। कुछ विद्वान् इस को काल्पनिक मानते हैं और महिदास ऐतरेय को संकलनकर्त्ता मानते हैं। पूर्वोक्त अवेस्ता के 'एथ्रेय' के आधार ऐतरेय का सम्बन्ध ऋत्विज् से होने के कारण महिदास ऐतरेय के साथ इसको जोड़ने से बचा जा सकता है सायण द्वारा निर्दिष्ट कथा के अनुसार महिदास ऐतरेय को कुलदेवी से केवल ऐतरेय ब्राह्मण एवं आरण्यक का ज्ञान प्राप्त हुआ था। ऐतरेय संहिता का जो उल्लेख मिलता है, उस ऐतरेय का क्या आधार है? यदि वह ऋत्विज् विशेष से सम्बद्ध है तो ऐतरेय ब्राह्मण व आरण्यक को भी उससे जोड़ा जाना चाहिए।

ऐतरेय ब्राह्मण के प्राचीन भाष्यकार :

वैदिक वाङ्मय पर इतिहास लिखने वालों ने कुछ विद्वानों का उल्लेख किया है, जिन्होंने इस ब्राह्मण पर भाष्य लिखा था। इन में भट्ट गोविन्द स्वामी (११, १२0h। शताब्दी) के भाष्य की पांडुलिपि वीवीआरआई में सुरक्षित है। हो सकता है यह छप चुका हो। जय स्वामी या जयन्त स्वामी ने इस ब्राह्मण पर भाष्य लिखा था, ऐसा पं० भगवद्दत्त ने उल्लेख किया है। १२३४ संवत् में जन्मे षड्गुरुशिष्य ने इस ब्राह्मण पर भाष्य लिखा था, जो अब उपलब्ध है। इसने अपने भाष्य में भट्टभास्कर का भी कहीं-कहीं उल्लेख किया है। भट्टभास्कर का भाष्य तालपत्रों एवं तेलगू लिपि में वीवीआरआई में संरक्षित है, ऐसा कुछ इतिहासकारों ने उल्लेख किया है, संग्रह संख्या - ६१९० हैं, ग्रन्थमान संख्या ३५०० एवं पत्रसंख्या १८२ है। अनेक वैदिक

---

[१] छान्दो० प्र० ३, खण्ड १६, का ७ (यह ११६ वर्ष तक जीवित था)

वाङ्मय के ग्रन्थों के भाष्य के साथ-साथ उसका ऐतरेय ब्राह्मण पर भी भाष्य उपलब्ध है। सायण का समय चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दी है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का निर्माण काल :

अन्तःसाक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्यों के आधार पर अनेक देशी, विदेशी विद्वानों ने ब्राह्मणग्रन्थों के रचनाकाल को निर्धारित करने का प्रयास किया है-

१- मैक्डोनल	: ८०० ई०पू० - ५०० ई०पू०
२- एच०एच० विल्सन	: ६०० ई०पू० (ऐतरेय ब्राह्मण)
३- मोनियर विलियम	: ७००-८०० ई०पू० (प्राचीनतम सात ब्राह्मण)
४- कीथ	: ८०० ई०पू०
५- काशीप्रसाद	: १००० ई०पू०
६- मैक्समूलर	: ८००-६०० ई०पू०
७- विंटर निट्ज	: ११०० ई०पू० (कृत्तिका के आधार पर)
८- याकोबी	: २५०० ई०पू० (कृत्तिकाओं के आधार पर)
९- सी०वी० वैद्य	: ३०००-२००० ई०पू०
१०- शंकर बालकृष्ण	: ३००० ई०पू० (कृत्तिका, ऋतु, मास आदि नाम के आधार पर)
११- तिलक	: २५०० ई०पू०
१२- स्वामी दयानन्द	: महाभारत कालिक (३००० ई०पू० के लगभग)
१३- प्रबोध चन्द्र	: ३१०२ ई०पू० (चार प्रमुख प्राचीन ब्राह्मण)

कुछ प्राचीन ब्राह्मणों में वेदों की तरह मधु, माधव आदि मासों के नाम या ऋतुओं के नामों का उल्लेख होने से उन्हें बहुत प्राचीन, लगभग ५००० ई०पू० तक का भी मानते हैं। कृत्तिकाओं और वसन्तसम्पात आदि के चक्र एवं उदय आदि के आधार पर २२००० वर्ष ई०पू० तक भी ब्राह्मण रचना काल मानने को तैयार हैं। युधिष्ठिर मीमांसक ऐतरेय ब्राह्मण का काल ३५०० विक्रम पूर्व मानते हैं। यह अब

सबने लगभग मान लिया है कि ऐतरेय ब्राह्मण जैमिनीय और शतपथ से प्राचीन है।

उक्त काल निर्धारण की जानकारी के लिए अनेक इतिहास ग्रन्थ हैं जिनमें कुछ विशेष अंक के लेख आदि भी द्रष्टव्य हैं। निर्दिष्ट विद्वानों के इतिहाससम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध हैं। स्वामी दयानन्द ने अपना मत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उल्लिखित किया है।

ऐतरेय ब्राह्मण की विषयवस्तु :

गुगल सूचना के अनुसार ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद की किसी शाखा का ब्राह्मण है जिसकी जानकारी नहीं है। यहीं से पता चलता है कि कुछ लोग इसे ऋग्वेद की शाकल शाखा से सम्बद्ध मानते हैं। ऊपर बताया जा चुका है कि ऐतरेय संहिता नाम से कोई ऋग्वेद की शाखा थी, जिससे यह ब्राह्मण सम्बद्ध है।

इस ब्राह्मण में चालीस अध्याय हैं। पाँच-पाँच अध्यायों की एक-एक पंचिका है, इस प्रकार आठ पंचिकायें हैं। ये पुनः कण्डिकाओं में विभक्त हैं। कुल दो सौ छियासी कण्डिकाएं हैं।

इस ब्राह्मण का मुख्य विषय सोमयाग है और सोमयाग से ही इसका प्रारम्भ होता है। आरम्भिक सोलह अध्यायों में अग्निष्टोम नामक सोमयाग का वर्णन है। इसके आगे भी विविध यागों का ही वर्णन है, जिसमें अतिरात्र, आश्विन, गवामयन कृत्य, षडह, विषुवान् सत्र, द्वादशाह कृत्य इत्यादि का वर्णन है। सप्तम पंचिका में पशुयाग, प्रायश्चित्ति तथा राजसूय याग का वर्णन है। अष्टम पंचिका में राजसूय का ही वर्णन है। आगे अभिषेक, पुरोहित कृत्य, ब्राह्मण-क्षत्रियों के सम्बन्ध, राजपुरोहितों के अधिकार इत्यादि वर्णित हैं।

निर्वचन प्रक्रिया में ऐतरेय ब्राह्मण का योगदान :

नि या निर् पूर्वक वच् धातु का प्रयोग ऋग्वेद में अनेकशः मिलता है, जैसे - **इदं वपुर्निवचनम्** (५.४७.५), **निवचना कवये** (४.३.१६), **अवोचाम निवचनान्यस्मिन्** (१.१८९.८) इत्यादि। अथर्ववेद में - **विषं निरवोचमहं त्वत्**

(९.८.१०)। कृष्णयजुर्वेद की काष्ठक संहिता में निरुक्त व निरुच्यमान शब्द का प्रयोग हुआ है (**ब्रह्मनिरुक्तं ..... निरुच्यमानम् ......** ९-१६) जो पारिभाषिक निरुक्त अर्थ में नहीं है। वैदिक वाङ्मय में व्याख्या या पूर्णतया कथन अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त है। निर्वचन का निरुक्त शब्द के प्रयोग के साथ प्रथम उदाहरण छान्दोग्योपनिषद् में प्राप्त होता है - **स वा एस आत्मा हृदि, तस्यैतदेव निरुक्तं, हृद्ययमिति। तस्माद् हृदयम्।**[१] इसके पश्चात् इसका शास्त्र के रूप में मुण्डकोपनिषद् में स्पष्टतया उल्लेख मिलता है।[२]

ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्त्रगत अनेक शब्दों की निरुक्तियां प्राप्त होती हैं। इन निरुक्तियों का शोध-प्रबन्ध के रूप में विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है और लोगों ने किया भी है। ऐतरेय ब्राह्मण में अग्निष्टोम, अहीन, गवामयन, चतुष्टोम, ज्योतिष्टोम, साहन, उत्तर, चतुर्विंश, षोडशी इत्यादि सैकड़ों शब्दों की निरुक्तियां प्राप्त होती हैं। शतपथादि ब्राह्मणों में तो यह परम्परा और भी अधिक विस्तृत होती गयी है।

[१] वही ८.३.३

[२] तत्रापरा ..... व्याकरणं निरुक्तं मु० १.१५

ऐतरेय ब्राह्मण में प्रतिपादित नैतिकमूल्य

डॉ० मोहिनी आर्या[१]

ऐतरेय ब्राह्मण यद्यपि यज्ञप्रधान है, किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण में नैतिक मूल्यों और उदात्त आचार-व्यवहार के सिद्धान्तों पर भी विशेष बल दिया गया है, क्योंकि याज्ञिक कर्मकाण्ड का सम्पादन जीवन के उच्च आदर्श और नैतिक प्रतिष्ठा के लिए किया जाता था। नैतिकता के अभाव में किया गया यज्ञ निष्फल समझा जाता था, अतः यज्ञ करने वाले को पाप, अनृत आदि का त्याग करके सत्य, सदाचार को अपनाना पड़ता था। समाज में नैतिक उच्चादर्शों का पालन करने वाला व्यक्ति ही सम्मान को प्राप्त करता था। ऐतरेय ब्राह्मण में सत्य, श्रद्धा, श्रम, तप, दान, आतिथ्य, व्रतपालन, पवित्रता, ज्ञान आदि गुण नैतिकता के उच्चादर्श हैं। इनका संक्षेप में प्रस्तुतीकरण इस प्रकार है-

सत्य

जो बात जैसी है, उसको वैसा ही कहना सत्य है। ऐतरेय ब्राह्मण में प्रथम अध्याय के षष्ठखण्ड में कहा गया है कि दीक्षित यजमान को सत्य ही बोलना चाहिए-

"ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा तस्माद् दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्।"

एक आख्यान में सत्य की महिमा बताने के लिए कहा गया है कि मनु के पुत्र 'नाभानेदिष्ठ' को सत्य बोलने के कारण एक सहस्र का लाभ हुआ।[२]

इसी प्रकार के अन्य वचन हैं। **"विदुषा सत्यमेव वदितव्यम्।"**[३] **"अवत्येनं**

[१] **सहायकाचार्या, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

[२] ऐत०ब्रा०, २२.९

[३] ऐत०ब्रा०, ५.२.९

सत्यमनृतं हिनस्ति।"[१] ऐतरेय ब्राह्मण में अहंकारयुक्त वाणी को राक्षसी वाणी कहा गया है, यथा- **"यां वै दृप्तो वदति, यामुन्मत्तः सा वै राक्षसी वाक्।"**[२]

श्रद्धा

श्रद्धा का अर्थ है- **"श्रत् सत्यं दधाति इति श्रद्धा।"** सत्य के साथ श्रद्धा का अटूट सम्बन्ध है। कहा भी गया है, श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान। ये दोनों उत्तम मिलकर उत्तम मिथुन हैं। इन दोनों से स्वर्गलोक को जीता जा सकता है-

"श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनं सत्येन मिथुनेन स्वर्गांल्लोकान् जयति।"[३]

श्रद्धापूर्वक यज्ञ करने वालों का इष्ट क्षीण नहीं होता है। श्रद्धा के अभाव में यज्ञ की कल्पना ही नहीं हो सकती है। अतः यज्ञ करने के लिए श्रद्धा का होना अत्यावश्यक है।

श्रम

सत्य और श्रद्धा मिलकर श्रम को जन्म देते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में श्रम का पर्याप्त महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। देवता श्रम, तप और यज्ञ करते हैं, तभी उनको स्वर्ग की प्राप्ति होती हैं। जैसा कि कहा गया है-

"देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाऽहुतिभिः स्वर्गलोकमजयन्।"[४]

शुनःशेप से सम्बद्ध आख्यान के प्रसंग में कर्मनिष्ठ जीवन और पुरुषार्थ साधना का महत्त्व बड़े ही काव्यात्मक ढंग से बताया गया है। शुनःशेप आख्यान में श्रम की महिमा इस प्रकार है-

"**नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जनः इन्द्र इच्चरतः सखा।"**[५]

---

[१] ऐत०ब्रा०, ४.१.१

[२] ऐत०ब्रा०, २.१.७

[३] ऐत०ब्रा०, ३२.१०

[४] ऐत०ब्रा०, ७.३

[५] ऐत०ब्रा०, ३३.३

अर्थात् जो थककर चूर नहीं हो जाता, उसको श्री प्राप्त नहीं होती। मनुष्यों में निवास करते हुए श्रेष्ठ व्यक्ति भी पापी हो जाता है। अतः हे रोहित तू विचरण कर।

आगे कहा है-

"पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।[१]

शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हतश्चरैवेति चरैवेति॥

अर्थात् चलने वाले की जंघाएँ सशक्त होती हैं। जो सफलता मिलने तक काम में जुटे रहते हैं, उनकी आत्मा प्रतिभा सम्पन्न होती है। परिश्रमी व्यक्ति की समस्त त्रुटियाँ मार्ग में स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

चतुर्युग का वर्णन करते हुए कहा है-

"कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।[२]

उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥ चरैवेति चरैवेति॥"

अर्थात् सोने वालों के लिए सदा ही कलियुग होता है। जिन्होंने श्रम करने का विचार कर लिया, उनके लिए द्वापर प्रारम्भ हो गया। जो करने के लिए खड़े हो गये त्रेता आ गया और जिन्होंने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया, उनके लिए सतयुग आ गया। अतः श्रम करो, श्रम करो॥

"**चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्वरम्**।[३]

सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्॥ चरैवेति।

श्रम से ही मधु प्राप्त होता है। परिश्रम से ही मधुर फल मिलते हैं। जो कभी चलने में आलस्य नहीं करता, ऐसे सूर्य को देखो। इसलिए श्रम करो, श्रम करो। श्रम करने के लिए प्रेरणा देने का इतना सुन्दर वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

ऋग्वेद में श्रम के विषय में कहा गया है-

"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।"[४] अर्थात् जो थककर चूर नहीं हो जाते, देव

---

[१] वही

[२] वही

[३] वही

[४] ऋग्वेद ४/३३/११

उनके मित्र नहीं बनते।

अथर्ववेद में भी पुरुषार्थ का उपदेश है- **"कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।"**[१]

तप

तप की महिमा अनन्त है। मनुष्यों की तो बात ही क्या, प्रजापति को भी सृष्टिसृजन हेतु तप करना पड़ा था, ऐसा वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त होता है-

"प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान्स्यामिति स तपोऽतप्यत॥"[२]

कौषीतकि ब्राह्मण भी इसका समर्थन करता है। कौषीतकि ब्राह्मण में कहा गया है कि देव भी किसी कार्य की सिद्धि हेतु तप करते थे।[३]

पवित्रता

पवित्रता यज्ञिय कार्य के लिए अनिवार्य शर्त थी। इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की पवित्रता को अपनाना पड़ता था। शारीरिक पवित्रता बाह्य शुद्धि तथा मानसिक पवित्रता सत्य, सदाचार आदि से होती थी। अतः ऐतरेय ब्रह्मण में आन्तरिक शुद्ध हेतु सत्य को अपनाने का अनेकशः निर्देश हुआ है-

"दीक्षितेन पुरुषेण सत्यमेव वदितव्यम्।"[४]

आन्तरिक पवित्रता के लिए आचार की पवित्रता पर भी ध्यान दिया जाता था। अनेक बार दूध के व्रत, यवागू के व्रत का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है। पवित्रता के लिए अन्य व्रतों का भी उल्लेख है।

दान

अपने परिश्रम से अर्जित सम्पत्ति से समाज कल्याण हेतु दान देना नैतिक उच्चादर्श था। याज्ञिक कर्मकाण्ड के बाद दान देना अनिवार्य था। यह यज्ञ की समृद्धि का कारण बताया गया है। दान देना प्रतिष्ठा का हेतु था।

---

[१] अथर्ववेद

[२] ऐत०ब्रा०, १९.१.२५.७

[३] कौषीतकी ब्रा० ८.९

[४] ऐत०ब्रा० १९.१.२५.७

अतिथिसत्कार

अतिथि के घर पर आ जाने पर उसका बहुत ही उल्लासपूर्वक स्वागत किया जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णन मिलता है कि जब सोम को घर पर लाते थे तो उसका सम्माननीय अतिथि के समान स्वागत होता है।[१] घर पर आये अतिथि को स्थान न देना पाप का कारण माना गया है-

"**अनेन समेनसा .... एकातिथिमपसायं रूणद्धि**।"[२]

इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण में तप, दान, अतिथि, सेवा आदि उच्च जीवन मूल्यों का समावेश है।

---

[१] ऐत०ब्रा०, ३.४

[२] ऐत०ब्रा०, २५.५

ऐतरेय ब्राह्मण में आचार विमर्श

डॉ० मैत्रेयी कुमारी[१]

भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार ज्ञान की परिणति सदाचार में होती है। दैनंदिन जीवन में मनुष्य का जो व्यवहार है, उसे ही उसका आचार अथवा आचरण कहा जाता है। आचार शब्द 'आ' उपसर्गपूर्वक 'चर्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने से बनता है। अंग्रेजी में इसे Ethics या Morality conduct (मनुष्य की ऐच्छिक क्रियायों का द्योतक) कहते हैं। कोष ग्रन्थ के अनुसार, आचार का अभिप्राय मानव के व्यवहार, चाल-चलन और आचरण से है।

वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, श्रुति, स्मृति सभी शास्त्रों में आचार-पालन एवं उसके महत्त्व पर बल दिया गया है। बौद्ध दर्शन मुख्यत: आचार दर्शन है जिसमें अष्टांगिक मार्ग का पालन सभी के लिए अनिवार्य माना गया है। जैन दर्शन में आचार के कठोर नियमों का विधान तथा हिंसा का सर्वथा निषेध किया गया है। इसी प्रकार सांख्य-योग, पूर्व शांकर वेदांती, रामानुज, शैव, शाक्त एवं अन्य दर्शन इत्यादि ग्रंथों में भी आचार के विषय में प्रमुखता से विचार किया गया है।

पाश्चात्य- नीतिशास्त्रीय चिंतन परम्परा में आचार ज्ञान- विधानवाद, प्रज्ञावाद, सुखवाद, विकासवाद, वैराग्यवाद, कर्त्तव्यवाद, पूर्णतावाद और मूल्यवाद नाम से जाना जाता है। पाश्चात्य नीतिशास्त्रियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो सच्चरित्रता या सद्गुणसंपन्न मानव को चरम शुभ मानता है।

वैदिक आचार्य विभिन्न आचारिक नियमों का पालन करते हुए अपने को धन्य

[१] **सहायकाचार्या, (संस्कृत) कमला नेहरू कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) नई दिल्ली-४९**

मानते थे। धर्म के मार्ग पर चलकर अर्थ लाभ द्वारा कामनाओं की पूर्ति करते हुए मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखते थे। ब्राह्मण ग्रंथों में आचार को पांच वर्गों में बांटा गया है जिन्हें वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक और उपासना संबंधी आचार की कोटि के अंतर्गत रखा गया है।

वैयक्तिक जीवन के गुणों के रूप में ऋत, सत्य, अहिंसा, मैत्री, अभय, स्वस्ति, विवेक, दान, यश, पापराहित्य, अतिथि-सत्कार, शुचिता आदि का वर्णन विभिन्न प्रसंगों में किया गया है।

व्यक्ति के सदाचार और शुद्धता पर बल देते हुए अस्तेय, व्यभिचार, ब्रह्महत्या, दुराचार, पाप को छिपाने हेतु किए जाने वाले असत्यभाषण, स्त्री-व्यसन, कठोर वचन और दूसरों पर मिथ्या दोषारोपण को निषिद्ध माना गया है।

ऐतरेयकार ने वाणी का गौरव गान किया है एवं अहंकार से युक्त वाणी को राक्षसी वाणी कहा है। वाणी ऐसी नाव सुतर्मा है जिसके माध्यम से पापों को पार कर स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता है।

यज्ञो वै सुतर्मा नौः कृष्णाजिनं वै सुतर्मा नौर्वाग्वैः
नौर्वाचमेव तदारुह्य तया स्वर्गं लोकमभि संतरति।[१]

वाणी का संयमपूर्वक प्रयोग आवश्यक है। पशु-हिंसा(पशु बलि एवं नर बलि) की निंदा की गई है। वैयक्तिक आचरण का पारिवारिक, सामजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन में महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

वास्तव में हमारे विचार ही आचार के प्राण स्वरूप होते हैं। अतः हमारा आचार श्रेष्ठ एवं अनुकरणीय होना चाहिए। संसार में संभवतः ब्राह्मण ग्रन्थ ही ऐसा धार्मिक साहित्य है जो आस्था के स्थान पर हेतु(reason) का आश्रय लेता है। अपनी सर्वांगीणता और समुद्र-सा गाम्भीर्य के कारण ब्राह्मण ग्रन्थ श्रद्धास्पद है। यह वाङ्मय एक विराट समाज की समग्र धार्मिक मान्यताओं और क्रियाकलापों का प्रस्तावक होने के साथ ही सञ्ज्ञायक भी है।

कहा गया है आचरणहीन व्यक्ति को वेद भी शुद्ध नहीं करते। '**आचारहीनं न**

---

[१] ऐतरेय ब्राह्मण १/३/२

पुनन्ति वेदाः'

आचार रहित ज्ञान खपुष्प अर्थात् आकाशकुसुम अथवा वन्ध्यास्त्री की तरह निष्फल है। ऐसे ज्ञान से सूचना तो प्राप्त होती है परंतु कार्य सिद्धि नहीं होती। आज ऐसे ही ज्ञान का सर्वत्र प्रचार-प्रसार हो रहा है। अतएव ब्राह्मण ग्रंथों की महता एवं प्रासंगिकता आज और भी अधिक हो गयी है।

ऐतरेय ब्राह्मणकार ने ऋत[१] और सत्य पर बल देते हुए कहा है-

ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा तस्माद् दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्। विदुषा सत्यमेव वदितव्यम्।[२]

अवत्येन सत्यमनृतं हिनस्ति।[३]

ऋतजा इत्येशु वै सत्यजाः।[४]

ऋतजा अर्थात् वैदिक मन्त्र से उत्पन्न सत्य। जीवन में सत्यासत्य भाषण- दोनों का प्रभाव मनुष्य के आचरण-व्यवहार में दीख पड़ता है। अग्निहोत्र सत्य पुरुष है।

यदि वा हरे नद्धा पुरुषः।[५]

इसके विपरीत जो व्यक्ति न देवताओं की, न पितरों की और न ही (अतिथि रूप में) मनुष्य की पूजा करता है वह असत्य पुरुष है।

कोऽनद्धा पुरुष इति, न देवान् पितृन् मनुष्यानीति।[६]

ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित मित्रता, स्वामिभक्ति, सहिष्णुता, द्रोह एवं उग्रता की समाप्ति कराने वाली वाणी की महत्ता तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अतिथि-सत्कार, यशप्राप्ति, सहकारिता, विवेकशीलता, कर्मनिष्ठजीवन, पुरुषार्थ, साधना, अनुज्ञा, पाप-पुण्य, मौन, दान इत्यादि वैयक्तिक आचार तो बहुत ही सुन्दर ढंग से हमें आख्यानों के माध्यम से आकृष्ट करते हैं। ये अनुकरणीय हैं।

---

[१] ऋत अर्थात् सत्यभूत ब्रह्म

[२] ऐतरेय ब्राह्मण ५/२/९

[३] वही ४/१/१

[४] वही ४/३/६

[५] वही ७/२/८

[६] वही ७/२/८

पारिवारिक आचार के अंतर्गत सर्वप्रथम विचारणीय बिंदु परिवार है। परिवार के सदस्यों का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

अदितिर्माता स पिता स पुत्रः इति। इयं वै मातेयं पितेयं पुत्र॥[१]

माता-पिता, भाई-भाई, बहन एवं अन्य सम्बन्ध किस प्रकार निर्वाह किया जाना चाहिए- इसका अनुकरणीय सन्देश दिया गया है, "यथा- भाइयों के सम्बन्ध परस्पर मधुर होने चाहिए, बड़े भाई को छोटे भाई का हिस्सा नहीं हड़पना चाहिए। भाईयों में ज्येष्ठ और गुणों में श्रेष्ठ को ही यजन का अधिकार प्रदान किया गया है- **'ज्येष्ठश्रेष्ठो यजेत्।'**[२]

सामाजिक नैतिकता के उद्धरणस्वरूप ब्राह्मणकार ने निर्देश किया है कि दूसरे के घर पर नहीं रहना चाहिए, किसी को उसके उचित भाग से ही समृद्ध करना चाहिए, किसी स्थान विशेष में वहां के स्वामी की आज्ञा लेकर ही प्रवेश करना चाहिए, योगक्षेम विचारपूर्वक ही कार्य का प्रारम्भ करना चाहिए एवं गुरु के प्रति द्रोह नहीं करना चाहिए। सबके प्रति समान एवं विमल दृष्टि रखनी चाहिए इत्यादि।

इन सबके सम्यक परिणाम के द्वारा व्यक्ति श्रेष्ठ आचरण से युक्त होता है। इन गुणों के पालन से समृद्ध एवं सुखी समाज के निर्माण में सहायता मिलती है। इसके विपरीत आचरण वाले व्यक्ति की लोग निंदा करते हैं।

'यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते, ससामन भवत्यसा मन् य इति हि निन्दन्ति।'[३]

किसी को उचित भाग से समृद्ध करने के सम्बन्ध में घृत का उदाहरण देते हुए कहा गया है-

स्वेनैबैनं तद्भाग्धेयेन समर्धयन्ति।[४]

दक्षिणी या इष्टि के विधान के समय, आज्य देवों के लिए, सुताभियुक्त घृत

---

[१] वही ३/३/७

[२] वही ४/४/३

[३] वही ३/२/१२

[४] वही १/३

मनुष्यों के लिए, आयुत (आधा पिघला हुआ घी) पितरों के लिए और नवनीत गर्भस्थ जीवों के लिए होता है।

आचारहीन, सदोष और गुणहीन व्यक्ति के निष्कासन की चर्चा प्राप्त होती है- **ते कवष मैलूषं सोमाद् नयनम दास्याः पुजः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्येऽदी क्षिष्टेति।**[१]

अर्थात् भृगु, अंगिरा आदि ऋषियों ने ईलूप के पुत्र कवष को यह कहते हुए सोमयाग से निकाल दिया कि यह दासी पुत्र, जुआरी और अब्राह्मण हम शिष्टजनों के बीच कैसे शिक्षा प्राप्त करेगा?

श्रेष्ठ कार्य के संपादनार्थ अथवा अभीष्ट लक्ष्य पाने हेतु अथवा किसी प्रतियोगिता में विजयी होने के लिए स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना का होना भी अत्यावश्यक है; यथा- सोमपान हेतु (दौड़) प्रतियोगिता में वायु, इंद्र, मित्रावरुण, अश्विनौ पहुंचे और उसी क्रम से सोमपान के अधिकारी हुए।[२]

अगम्यागमन के विषय में विचार करना भी अपराध बतलाया गया है; यथा- प्रजापति (द्युलोक का देवता/ उषा का देवता) का अपनी दुहिता (हिरनी/ऋतुमती) के प्रति भार्या के रूप में सोचकर गमन को देख रूद्र द्वारा दण्डित करना।

राजनैतिक आचार- इसके अन्तर्गत राजा (सम्राट्) का कर्त्तव्य दर्शाया गया है कि राजा राष्ट्र के कल्याण हेतु कार्य करे उनमें उत्कृष्ट गुण हों तथा युद्ध में विजयी होने की क्षमता हो, इसलिए शक्तिशाली व्यक्ति को ही राजा बनाना चाहिए। उसे प्रजाद्रोही नहीं होना चाहिए। राजा को सम्पूर्ण विश्व के साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए, तब सम्पूर्ण विश्व उसका मित्र बन जाता है इत्यादि।[३]

उपासना सम्बन्धी आचार का भी विधान किया गया है साथ ही अतिथि पितर, माता-पिता, गुरुजन, राजा, प्रजा इत्यादि के प्रति श्रेष्ठ आचरण का विधान किया गया है।

---

[१] वही २/३/१

[२] वही २/४/१

[३] वही १/३/३, ६/४/४

ऐतरेय ब्राह्मण बहुजन सुखाय की भावना से युक्त- 'आपो रेवती' है। इसमें यज्ञ, श्रम और तपस् की प्रशंसा की गयी है। **पुरा कदाचिद्देवा ज्योतिष्टोमादियागेन तीर्थयात्राश्रमेण कृच्चान्द्रायणादितपसा कूष्माण्डगणहोमादिगताभिराहुरतिभिश्च स्वर्गं लोकमजयन् वशीकृतवन्तः।**[1] **भवति यत्रैव विद्वान् नीचैस्तरां धाय्याँ शंसति।**[2]

यहाँ पर स्त्री के स्वभाव का वर्णन किया गया है। पत्नी से मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए। पत्नी सुवर्ण(सुन्दर लगाने के कारण) रूप हैं, भोग में सहायक होने से सखा स्वरूप है।

'अनाहं प्राणः शरणं हवासो, रूपम हिरण्यं, पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया, कृपणं दुहिता, ज्योतु ह पुत्रः परमे व्योम॥'[3]

ऐतरेय ब्राह्मण ने विधान किया है कि भाई- भाई के सम्बन्ध मधुर होने चाहिए उनके मध्य सामञ्जस्यपूर्ण व्यवहार हो। हमें वयोवृद्ध के प्रति आदर का भाव रखना चाहिए।

तदाहुरथ कस्माद् उत्करे माह्व्यतीत्यमृषयो वै[4]

पारिवारिक कल्याण की कामना करते हुए पुत्रादि प्रजा और पशु दोनों के कल्याण की कामना की गयी है-

पुण्यति प्रजां पशूंश्च च एवं विद्वान् बैल्बं यूपं कुरुते।[5]

यज्ञ में मन्त्र का पूर्ण पठन करना चाहिए अन्यथा दण्ड का भागीदार होता है, यदि वह नहीं दण्डित होता तो उसका पुत्र, दण्डित होता है। हृदय में भावना रखकर ही धार्मिक कृत्य करने चाहिए। मनुष्य को किसी की चिन्ता या निंदा नहीं करनी चाहिए। महोदय ने भी कहा है- We shall bespeak the so of wealth.

सम्प्रति मनुष्य के नैतिक मूल्यों में अत्यधिक ह्रास होता जा रहा है जिसका

---

[1] वही सायणभाष्य, पृ. २६१

[2] वही ३/२/१३

[3] वही ७/३/१

[4] वही ६/१/३

[5] वही २/१/१

परिणाम धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षणिक स्तर पर भी मूल्यों में विघटन के रूप में सामने आ रहा है जो चिंता का विषय है। ऐसी विषम परिस्थिति में जब समाज, परिवार, देश विखंडित होता जा रहा है, हमारे वैदिक वाङ्मय ब्राह्मण ग्रन्थ दीपक के सामन रास्ता दिखाते प्रतीत होते हैं। जिस आचरण से हमारा उत्थान हो, दूसरे का भी अहित न हो, ऐसे मानवीय दृष्टि से उदात्त आचरण, व्यवहार ऐतरेय ब्राह्मण में समाविष्ट हैं। इसमें प्रतिपादित नित्य, नैमित्तिक कार्य और प्रायश्चित्त कर्मों एवं त्राण, शुचिता आदि सुविचारों और श्रेष्ठ गुणों को अपनाकर व्यक्ति अपना जीवन सफल बना सकता है।

ऐतरेय ब्राह्मण में सोमानयन का स्वरूप

डॉ० उमा शर्मा[१]

सृष्टि की रचना और उसका संचालन सर्वथा व्यवस्थित एवं प्राकृतिक नियमों के अधीन है। विधाता की उत्तम सृष्टि होने के कारण बुद्धि मनुष्य की जन्मजात शक्ति है। वह अभाव से मुक्ति एवं भाव-प्राप्ति, अनृत से सत्य, अन्धकार से प्रकाश एवं मृत्यु से अमरत्व प्राप्ति की कामना से अन्वेषण की ओर उन्मुख होता है। विविध ज्ञान-विज्ञान एवं संस्कृति-सम्भ्यताओं का विकास इसी अन्वेषणपरक प्रकृति का परिणाम है। वैदिक ऋषियों ने भी मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए सोम के रूप में अमृत का अन्वेषण करके उच्च स्वर से स्पष्ट उद्घोष किया-

"अपाम सोममृता अभूम"[२]

अर्थात् हमने सोमरस का पान कर लिया है, हम अमर हो गए हैं।

महान् चिकित्साविद् सुश्रुत ने भी शब्दान्तर से सोम को जरा एवं मृत्यु से मोक्ष प्राप्त कराने वाला अमृत रस ही बताया है-

"ब्रह्मादयो असृजन् पूर्वममतं सोमसंज्ञितम्"[३]

निरुक्तकार आचार्य यास्क ने सोम का अर्थ ओषधि - **सोमः सुनोतेः यदेनमभिषुण्वन्ति** अर्थात् जिसका रस निकाला जाता है।

वामन शिवराम आप्टे के अनुसार सोम का अर्थ होता है, किसी पदार्थ से सार तत्त्व का अभिषवन करना (षुञ् अभिषवे+मन्)[४]

---

[१] **उपाचार्या, संस्कृत विभाग, एन०ए०एस० कॉलेज, मेरठ**

[२] ऋग्वेद - ८-४-३

[३] सुश्रुत - २९/३

[४] वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ ११२८

"अमरकोश" में सोम के हिमांशु, चन्द्रमा, चन्द्र, इन्दु, कुमुद-बान्धव, विधु, सुधांशु, शुभ्रांशु, ओषधीश, निशापति, अब्ज, जैवातृक, सोम, ग्लौ, मृगांक, कलानिधि द्विजराज, शशधर, नक्षत्रेश, क्षयाकर ये बीस नाम उल्लिखित हैं।[१]

सोम की उपादेयता एवं महत्त्व से समग्र वैदिक वाङ्मय ओतप्रोत है। यदि हम सोम की व्याख्या अभिषवन करते हैं, तो इसका अभिप्राय होगा - प्रत्येक अनुपयोगी प्रतीत होने वाली वस्तु से जीवनोपयोगी तत्त्वों का निर्माण करना। जिससे व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र का हित सम्पादित हो सके।

वेद में प्रयुक्त सोम शब्द के भाष्यकारों ने राजा, ब्रह्मचारी, स्नातक, शुक्र, ओषधि चन्द्रमा, न्यायादि विविध अर्थ किए हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में "ज्योतिः, श्रीः, वायुः, रात्रिः, पलाश, पशु, दधि, प्राण, रेत, ब्राह्मण, पयः, आपः सोम-सुतः इत्यादि विविध अर्थ किये गये हैं। शतपथ ब्राह्मण में तो यहाँ तक कह दिया गया है- **सर्वं हि सोमः**[२] अर्थात् सब कुछ सोम है।

वस्तुतः सोम आनन्ददायक, स्फूर्तिदायक एवं बलवर्धक पेय है, जिसे एक लताविशेष के डंठलों को उलूखल में डालकर लोढ़े (ग्रावन्) या मूसल से कुचलकर या कूटकर तत्पश्चात् दबाकर उसका रस निचोड़ा जाता था तथा उसको शुद्ध (पूत) करने के लिए ऊनी कपड़े से छान लिया जाता था। तत्पश्चात् दूध या दही मिश्रित करके यह रस देवों को दिया जाता था। इस सम्पूर्ण कर्म की प्रक्रिया यज्ञ की रूपरेखा है, जिसे सोमयाग कहते हैं। सोमयागों का वैदिक कर्मकाण्डों में सर्वाधिक महत्त्व है। इन यागों में दिन में तीन बार प्रातः, मध्याह्न तथा सायं सोम का सेवन किया जाता था और वैदिक देवमण्डल के देवों को तीन गणों में विभक्त करके प्रत्येक बार उनके एक-एक समूह को सोम पान के लिए आमन्त्रित किया जाता था।[३]

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार मनुष्यों में सोमरस का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रधानतः ब्राह्मणों से है।[४] ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लिखित है कि सोम ब्राह्मणों का प्रधान पेय है और ब्राह्मणों का सखा है-

---

[१] अमरकोश - १-३

[२] शतपथ ब्रा० - ५-५-४-११

[३] निरुक्त - १२-१

[४] ऐतरेय ब्रा०-७-२९; शत०ब्रा०-५-४-२३; तै०ब्रा० १-४-७-२ ताण्ड्य ब्रा० २३-१६-५

"सभासाहेन संख्या सखाय इत्येष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा यत्सोमो राजा"[१]

यह भी उल्लिखित है कि ब्राह्मण लोग सोम की मादकता को कम करके उसे स्वादिष्ट बनाने के लिए दूध, दही अथवा जल का मिश्रण करके सेवन करते थे।[२]

ब्राह्मण ग्रन्थों में सोम को अनेकशः राजा एवं राजाओं का राजा कहा गया है यथा[३]-

(क) **सोमो वै राजा**

(ख) **राजा वै सोमः**

(ग) **सोमो राजा राजपतिः**

ऐतरेय ब्राह्मण में अन्यत्र यश के रूप में उल्लिखित है- **"यशो वै सोमो राजा"।**[४]

वैदिक वाङ्मय में जहाँ सोम के विविध एवं असंख्य वैशिष्ट्य निरूपित किए हैं, वहाँ यह भी कहा गया है कि इस सोमरस के पान से कायाकल्प हो जाता है तथा दिव्य श्रवण, दर्शन आदि शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वैदिक रीडर में ए०ए० मेकडॉनल लिखते हैं- "सोम में अति औषधीय शक्ति है। वह अन्धे को दृष्टियुक्त एवं लंगड़े को गमनशक्ति सम्पन्न बना देता है।" ऋग्वेद के दसवें मण्डल के २५वें सूक्त के ११वें मन्त्र में इस बात का प्रमाण मिलता है, नेत्रहीन दीर्घतमा ऋषि को नेत्र एवं पंगु परावृज ऋषि को पैर प्रदान उल्लिखित है[५]।

वेदों में वर्णित तथ्यों का प्रयोग आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक

---

[१] ऐतरेय ब्रा० - १-१३

[२] ऐतरेय ब्रा० - २-३-४

[३] (क) ऐतरेय ब्रा० १३-१

(ख) शतपथ ब्रा० - १-६-४-५

(ग) सोमो राजा राजपतिः - श०ब्रा० १४-२-३-१२

[४] ऐतरेय ब्रा० ३-२

[५] अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः।

अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे॥ ऋ० १०-२५-११

परिप्रेक्ष्यों में विश्लेषण किया जाता है। सोम के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए भी विभिन्न रूपों में वर्णित सोम के आधिभौतिक, आधिदैविक एवम् आध्यात्मिक अर्थात् भूस्थानीय, अन्तरिक्षस्थ एवं द्युलोकस्थ सोम के परिप्रेक्ष्य में विवेचन अपेक्षित है। इस समय मैं अपने विवेच्य विषय को अधिकृत करते हुऐ द्युस्थानीय सोम की ही चर्चा यहाँ करूँगी।

ऋग्वेद में उल्लिखित श्येन के द्वारा आकाश से सोम को लाने की कथा का बाह्मण ग्रन्थों में एक अन्य स्वतन्त्र कर्मकाण्डीय विकास हुआ है। वैदिक याज्ञिकों का यह विश्वास था कि वास्तविक सोम आकाश में ही है, किन्तु विशिष्ट वैदिक मन्त्रों से उसका सन्निवेश पार्थिव सोम में भी कर लिया जाता है। ये वैदिक मन्त्र या छन्द ही एक प्रकार के पक्षी हैं, जो आकाश से सोम को पृथ्वी पर लाते हैं। ब्राह्मणग्रन्थों में सर्वत्र यही अवधारणा है। गायत्री सर्वप्रमुख छन्द है। वही पक्षिराज श्येन है, जो अन्ततः सोम को पृथ्वी पर लाने में सफल होता है। छन्दों को ब्राह्मण ग्रन्थों में वाक् का पुत्र बताया गया है, जो सर्वथा उचित ही है। इसी वाक् का मानवीकरण सुपर्णा के रूप में किया गया है, जो इन छन्दों की माता कही गई है। सुपर्णा शब्द श्येन या गरुत्मान् वाची सुपर्ण शब्द से ही स्त्रीलिंग प्रत्यय जोड़कर बना लिया गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण के तेरहवें अध्याय में 'सुपर्णाख्यान' नाम से द्युलोक से सोम को लाने की कथा उल्लिखित है, जिसको मैं साररूप में प्रस्तुत कर रही हूँ। पहले सोम राजा द्युलोक में ही थे। ऋषियों ने सोमयाग की अपेक्षा से छन्दों से कहा कि आप हमारे लिए 'सोम' को पृथ्वी पर लायें। तदनुसार छन्द पक्षी के रूप में द्युलोक के प्रति उड़े। इसलिए आख्यानवेत्ता इसे "सौपर्णाख्यान" नाम से पुकारते हैं।[१] गायत्री के पक्षी के रूप में सोमानयन हेतु उड़ने से पूर्व जगती एवं त्रिष्टुप् छन्दों को भी उसके लिए प्रयत्न करते हुए वर्णित किया गया है। प्रथमतः चार अक्षरों वाली जगती सोम के लिए उड़ी, किन्तु वह केवल दीक्षा एवं तप को ही ला सकी, तथापि उसके तीन अक्षर नष्ट

[१] सामे वै राजाऽमुष्मिँल्लोके आसीत्, तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन् कथमथमस्मात् सोमो राजाऽऽगच्छेदि, तेऽब्रुवन् छन्दांसि यूयं न इमं सोमं राजानमाहरेति, तथेति, ते सुपर्णा भूत्वोदपतंस्ते यत्सुपर्णा भूत्वोदपतस्तदेतत् सौपर्णमित्याख्यानविद आचक्षते इति। ऐतरेय ब्राह्मण - १३/१

हो गये और वह केवल एकाक्षरा होकर लौटी।[१] जगती के सोमानयन कार्य में असफल होने पर 'त्रिष्टुप्' भी उड़ा, किन्तु वह भी 'दक्षिणा' को ही लेकर लौटा किन्तु सोम को लाने में असफल रहा, साथ ही उसका एक अक्षर भी नष्ट हो गया। फलस्वरूप वह तीन अक्षरों का होकर लौट आया।[२] एतदनन्तर देवताओं ने 'गायत्री' से प्रार्थना की कि तुम हमारे लिए सोम राजा का आहरण करो- **"ते देवा अब्रुवन गायत्री" - त्वं न सोमं राजानमाहरेति"**[३] तब गायत्री द्युलोक के प्रति उड़ी और देवताओं ने उसके लिए स्वस्तिवाचन किया-

सोदपतत्, तां देवाः सर्वेण स्वस्त्ययनेनान्वमन्त्रयत - प्रेति चेति चेति।[४] गायत्री अजस्र ज्योति के साथ केवल चार अक्षरों सहित उड़ी, वह सोम को भी ले आयी और जगती एवं त्रिष्टुभ् के शेष अक्षरों को भी ले आयी। इस प्रकार उसमें आठ अक्षर हो गये।

ऐतरेय ब्राह्मण में यह भी उल्लेख है कि सोम की रक्षा अनेक सोमपालक कर रहे थे किन्तु गायत्री ने उन सबको भयभीत करके मुख तथा चरणों में सोम को दबा लिया- **"सा पतित्वा सोमपालान् भीषयित्वा पद्भ्यां च मुखेन च सोमं राजानं समगृभ्णाद् यानि च इतरे छन्दसी अक्षराण्यजहितां तानि चोपसममृभ्णात्"।**[५] गायत्री को सोमपालक गन्धर्वों के साथ जो युद्ध करना पड़ा, उसमें 'कृशानु' नामक गन्धर्व ने गायत्री के पीछे एक बाण छोड़कर उसके बाएँ पैर का नाखून काट डाला और वह नख शल्यक (बन्दर के शरीर के समान शलल्याख्य पशु-सा ही) हुआ। नाखून से बहने वाले बसा से मेध्य पशु, बकरी भेड आदि हुआ, जो हवि के समान (देवयोग्य) है। जो बाण और नोंक थी, वह देशरहित सर्प (जल का दुन्दुभाख्य)

---

[१] सा जगती चतुरक्षरा प्रथमोदपतत्, ... सा परास्य त्रीण्यक्षराणि एकाक्षरा भूत्वा दीक्षां च तपश्च हरन्ती पुनरभ्यवापतत्।" ऐतरेय ब्राह्मण - १३/१

[२] अथ त्रिष्टुप् उदपतत् ..... सा परास्यैकमक्षरं त्र्यक्षरा भूत्वा दक्षिणां हरन्ती पुनरभ्यवापतत्" ऐतरेय ब्राह्मण - १३/१

[३] ऐतरेय ब्राह्मण - १३/२

[४] वही १३/२

[५] वही १३/२

हुआ। इस (कुण्ठित अग्रभाग के लोहे) के वेग से दो मुँह का सर्प हुआ। इसके जो कंकपत्र (पंख) थे, वे मन्थावल (वृक्ष की शाखाओं में अधोमुख लटकने वाले जीव विशेष) हुए, जो स्नायु (षत्रबन्धन) थे, वे केचुए हुए और जो बाण में तेजधार थी, वह दृष्टिरहित सर्प हुआ। इस प्रकार वह बाण इस उक्त रूप में परिवर्तित हो गया। "**तस्या अनुविस्रज्य कृशानुः सोमपालः सव्यस्य पक्षे नखमच्छिनृत्, तच्छल्यकोऽभवत् .... सो तथा तथेयुरभवत्**"[१] ऋग्वेद में लौहमय पुर को भग्न करके श्येन द्वारा सोमानयन का उल्लेख है और शतपथ ब्राह्मण में सोम के चारों ओर तीक्ष्ण धारों से युक्त दो आयुधों के घूमने का उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण के तेरहवें अध्याय में उक्त सुपर्णाख्यान नाम से द्युलोक से गायत्री के द्वारा श्येन का रूप धारण करके सोम को पृथ्वी पर लाने का जो वर्णन है, उसके सम्बन्ध में यहाँ विचारणीय है कि 'गायत्री' एक छन्द विशेष का नाम है, वह किसी पदार्थ को किसी स्थान विशेष से लाने में कैसे सक्षम हो सकती है? वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थों में "**गायत्रं वै ब्रह्म**" अर्थात् ज्ञान ऐसा कहा गया है। यह सुपर्णाख्यान भी एक रूपक के रूप में वर्णित है। श्येन रूप जीवात्मा का गायत्री आदि ज्ञान साधनों के अनुष्ठान द्वारा परमात्म साक्षात्कार रूप आनन्द प्राप्त करना ही सोम की प्राप्ति है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५वें सूक्त की तृतीय ऋचा में भी इसी तथ्य का उल्लेख है-

"सोमं मन्यते पपिवान् यं संपिंषन्योषधिम्।
सोमं यं ब्राह्मणं विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन॥"[२]

अर्थात् सामान्यतः जन सोमलतादि ओषधियों एवं वनस्पतियों को पीसकर उसका पान करते हैं और यह समझते हैं कि हमने सोम का पान कर लिया किन्तु जो वास्तविक सोम है, जिस सोम को ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी जन ही जानते हैं, उसे कोई भी व्यक्ति मुख से पीने की सामर्थ्य नहीं रखता।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि धात्वर्थ एवं निर्वचन के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र का सारभूत तत्त्व सोम है। दुःखत्रय के अभिघात से पीड़ित मानव

---

[१] ऐतरेय ब्राह्मण १३-२

[२] ऋ० १०-८५-३

संघर्षपूर्वक अनुपयोगी वस्तुओं से जीवनोपयोगी तत्त्वों का निर्माण करते हुए भी परब्रह्म की उपासना से विमुख न होकर तन्मय रहे, परब्रह्म से तादात्म्य स्थापित होने पर जो परमानन्द की प्राप्ति होगी, उसको ही सोम मानकर उसका मान करने से दुःखत्रय से मुक्ति प्राप्त होगी, अमरत्व प्राप्त होगा।

ऐतरेय ब्राह्मण की अष्टम पंचिका में वर्णित राजा के गुण तथा कर्त्तव्य एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता

डॉ० रुचि गुप्ता[१]

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में ऐतरेय ब्राह्मण का सर्वप्रमुख स्थान माना जाता है। इसके रचयिता महीदास ऐतरेय हैं। कहा जाता है कि इनकी माता का नाम इतरा था। एक बार पिता के द्वारा अपने अन्य विमातृज भाइयों पर अधिक स्नेह देखकर ये खिन्नमना तप करने चले गये जिसके फलस्वरूप इन्हें अद्भुत पाण्डित्य प्राप्त हुआ तथा ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रतिभासित होने का वरदान मिला।[२] स्कन्द पुराण एवं महर्षि सायण ने भी इनकी माता का नाम इतरा स्वीकार किया है।[३]

ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय हैं। प्रत्येक पाँच अध्याय की "पंचिका" संज्ञा है। अध्याय खण्डों में विभाजित हैं। इस प्रकार इसमें कुल आठ पंचिकायें तथा २८५ खण्ड हैं। इस ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रधान विषय सोमयाग है। अग्निष्टोम समस्त सोमयाग की प्रकृति है, अतः इसका अत्यधिक विस्तार से वर्णन मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में सोमयाग के विभिन्न स्वरूपों, राजसूय याग, इन्द्र का महाभिषेक एवं विभिन्न शासन प्रणालियों का विस्तृत वर्णन है।

अष्टम पंचिका में राजा के गुण एवं कर्त्तव्यों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ यह भी उल्लेख मिलता है कि सर्वप्रथम राजा की आवश्यकता ही क्यूँ पड़ी? इस विषय में एक आख्यान दिया गया है कि एक बार देवों तथा असुरों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में देवता पराजित हुये तथा असुरों को विजय मिली। तब देवताओं ने स्वयं का

---

[१] **उपाचार्या, संस्कृत विभाग, दि० जैन कालिज, बडौत (बागपत)**

[२] ऐतरेय ब्राह्मण, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, भूमिका, पृष्ठ ५२-५३।

[३] वही,

राजविहीन होना ही उस पराजय का कारण स्वीकार किया। तत्पश्चात् उन्होंने 'सोम' को राजा चुना तथा उसके नेतृत्व में विजय प्राप्त की।[१]

राजा को ओजस्वी, शारीरिक बल से युक्त तथा आचरण में साधुवृत्ति का होना चाहिए। अष्टम पंचिका के तृतीय अध्याय के प्रथम खण्ड में बताया गया है कि "एक बार देवताओं के मध्य 'राजा' बनने के लिए विचार हो गया, तब प्रजापति ने कहा कि देवों के मध्य इन्द्र ही अत्यन्त ओजस्वी, शारीरिक बल से युक्त, शत्रु की पराजय में पूर्ण समर्थ तथा दिये गये कार्य को पूर्ण करने वाला है। अतः यही राजा होगा। तब देवताओं ने एकमत होकर इन्द्र को ही राजा के रूप में स्वीकार किया।[२]

उपर्युक्त आख्यान राजा के गुण एवं कर्त्तव्य दोनों पर प्रकाश डालता है। इसमें आगे जब इन्द्र को वेदमयी आसन्दी पर बैठा दिया जाता है, तब समस्त देवता इन्द्र के गुणों का आख्यान करते हैं। उन्होंने कहा कि गुणाख्यान के बिना इन्द्र पराक्रम करने के योग्य नहीं हो सकते क्योंकि कीर्ति के बिना शत्रुओं में भय का उदय नहीं हो सकता। तब सब देवता इन्द्र के गुणों का कीर्तन करते हैं।[३] यह गुणाख्यान भी राजा के गुणों पर प्रकाश डालता है। इसी अध्याय के तृतीय खण्ड में कहा गया कि व्रत धारण करने वाले और सभी के अनिष्ट का निवारण करने वाले, साम्राज्य के लिये, भोग के लिये, स्वराज्य के लिये, प्रमुख (वैराज्य) के लिये, परलोक में प्रजापति के लोक की प्राप्ति के लिये, राज्य के लिये, महान् ऐश्वर्य के लिये, आधिपत्य के लिये, अपरतन्त्रता और चिरकाल तक वास के लिये शुभ संकल्प करके इन्द्र इस आसन्दी

---

[१] ऐतरेय ब्राह्मण, प्रथम पंचिका - तृतीय अध्याय - चतुर्थ खण्ड

"ते देवा अब्रुवनराजतया वै नो जयन्ति, राजानं करवामहा इति, तथेति, ते सोमं राजानमकुर्वस्ते सोमेन राज्ञा सर्वा दिशोऽजयन्नेष वै सोम राजा यो यजते ....।"

[२] वही, अष्टम पंचिका - तृतीय अध्याय - प्रथम खण्ड

"ते देवा अब्रुवन स प्रजापतिका - अयं वै देवानामो जिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतम इममेवाभिषिंचामहा इति, तथेति, तद्वै तदिन्द्रमेव।"

[३] वही

"तमेतस्यामासन्द्यामासीनं विश्वे देवा अब्रुवन्, न वा अनभ्युत्क्रुष्ट इन्द्रो वीर्यं कर्तुमर्हत्यभ्येनमुत्क्रोशामेति, तथेति ....।"

पर बैठे थे।[1] उपर्युक्त वर्णन राजा के निम्न कर्तव्यों पर प्रकाश डालता है-

१- राजा व्रत का पालन करने वाला हो अर्थात् जितेन्द्रिय हो।

२- राजा के अन्दर प्रजा के ऊपरी आने वाली समस्त विपत्तियों का प्रतिकार करने की सामर्थ्य हो।

३- प्रजाजनों पर अपनी प्रभुता स्थापित करना, जो प्रजा के पुत्रवत् पालन करने से ही स्थायी रूप से आती है।

४- राजा को अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह इस प्रकार करना चाहिये कि उसके पुण्यकर्मों की कीर्ति परलोक तक पहुँच सके।

५- स्वयं एवं प्रजा को महान् ऐश्वर्य प्रदान करना अर्थात् राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाना।

६- प्रजाजनों में सामाजिक व्यवस्था को बनाना ताकि प्रजा नियमों के अधीन रहे तथा अव्यवस्था न बने।

७- राज्य कभी भी परतन्त्र न हो अर्थात् राज्य का पालन इतनी कुशलता के साथ करना कि कभी शत्रुओं के हस्तगत न हो। इस हेतु सैन्य-व्यवस्था भी सुदृढ रखना।

अष्टम पंचिका के चतुर्थ अध्याय के प्रथम खण्ड में पुरोहित के द्वारा राजा को शपथ दिलाने का बड़ा सुन्दर सटीक वर्णन मिलता है। वहाँ शपथ लेने का उद्देश्य एवं शपथ लेने में जिस पदावली का प्रयोग किया जाना चाहिये, उसका पूरा विवरण दिया गया है। वहाँ पर कहा गया है कि जो पुरोहित यह चाहे कि राजा संग्राम में सभी जीतनेयोग्य भूमि जीत ले, सभी लोकों को ले ले, सभी राजाओं में श्रेष्ठ हो, सभी राजाओं से उत्कृष्ट एवं बड़प्पन को प्राप्त करे और साम्राज्य, भोग, समृद्धि, स्वराज्य, प्रभुसत्ता, प्रजापति के लोक की प्राप्ति, राज्य, महान् ऐश्वर्य और आधिपत्य को प्राप्त करे, यह सर्वव्यापी हो, सभा भूमि का स्वामी, पूर्ण आयु वाला, समुद्र पर्यन्त तक की

---

[1] ऐतरेय ब्राह्मण, अष्टम पंचिका - तृतीय अध्याय - द्वितीय खण्ड

"निषसाद् धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्या। साम्राज्याय, भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय महाराज्यायाऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय, सुक्रतुरिति।"

भूमि पर शासन करने वाला बने, उसे राजा को यह शपथ दिलानी चाहिये।[१] शपथ दिलाने के उद्देश्य के अनन्तर शपथ का प्रकार दिखाया गया है। पुरोहित राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में राजा से कहता है कि "हे अभिषिच्यमान क्षत्रिय! जिस रात्रि को तुम पैदा हुए, उससे लेकर जिस रात्रि को तुम मरोगे उस समय तक जो कुछ तुमने इस लोक में श्रौत या स्मार्त कर्म किया है तथा जो कुछ भी पुण्य किया है, या जो दीर्घ आयु प्राप्त की है, अथवा पुत्र-पुत्रादि प्राप्त हुए है, उस सबको मैं छीन लूँगा यदि तुमने मुझसे द्रोह किया।[२]

राजा के द्वारा इस शपथ का लेने के पश्चात् ही उसका अभिषेक करना चाहिए।[३]

राजा को दिलायी गयी इस शपथ से ज्ञात होता है कि राजा को तन-मन-धन से अपने राष्ट्र के प्रति पूर्ण निष्ठावान् होना कितना आवश्यक था?

शपथग्रहण के पश्चात् राजा को विभिन्न वस्तुओं से अभिमन्त्रित आसन्दी पर विराजमान करने का उल्लेख प्राप्त होता है तथा पुनः राजा के कर्त्तव्यों की झाँकी सी प्राप्त हो जाती है। वहाँ कहा गया है कि हे राजन्! तुम भोग समृद्धि के लिए इस आसन पर चढ़ो ..... स्वराज्य के लिये चढ़ो .... प्रभुत्व के लिये चढ़ो ..... प्रजापति के लोक की प्राप्ति के लिये चढ़ो ......।[४]

इसी पंचिका के पंचम अध्याय के प्रथम खण्ड में राजा का एक महत्त्व पूर्ण कर्त्तव्य श्रेष्ठ-योग्य पुरोहित का चयन करना है, यह बताया गया है। वहाँ कहा गया है

---

[१] अष्टम पंचिका - चतुर्थ अध्याय - प्रथम खण्ड, "स य इच्छेदेवंवित् क्षत्त्रियमयं सर्वा जितीर्जयेताय सर्वाल्लोकान् विन्देतायं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यमतिष्ठां परमतां गच्छेत ....।

[२] वही, "यां च रात्रीमजायेथा यां च प्रेतासि तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्तं ते लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृंजीयं यदि में दुह्येरिति।"

[३] वही

[४] अष्टम पंचिका - चतुर्थ अध्याय - तृतीय खण्ड

"तानन्वारोह साम्राज्याय...... तानन्वारोह स्वाराज्याय - तानन्वारोह वैराज्याय...... तानन्वारोह राज्याय ....।"

कि पुरोहित विहीन राजा के अन्न का देवता लोग भक्षण नहीं करते। इसलिये यज्ञ की इच्छा वाले राजा को एक ब्राह्मण रखना चाहिए ताकि देवता मेरे अन्न का भक्षण करें।[१]

राजा को अपने पुरोहित को सदा प्रसन्न रखना चाहिये क्योंकि उसकी प्रसन्नता मन के उत्साह रूपी शौर्य को, शारीरिक बल को, राष्ट्र और प्रजा को प्राप्त कराने वाली होती है।[२]

इस प्रकार उपर्युक्त समस्त वर्णनों से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि ऐतरेय ब्राह्मण की अष्टम पंचिका में राजा के विभिन्न गुणों एवं कर्त्तव्यों का सुन्दर दिग्दर्शन प्राप्त होता है। कितने आश्चर्य का विषय है कि आज से लाखों वर्ष पूर्व हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने राजा के जो कर्त्तव्य निर्धारित किये थे, आज के समय में भी किसी भी नेता या मन्त्री में इन्हीं गुणों की अपेक्षा की जाती है। वर्तमान में भी किसी राजनेता या मन्त्री आदि के अतिमहत्त्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित करने से पूर्व सम्बन्धित व्यक्ति को शपथ दिलायी जाती ही है। यह शपथ समारोह यदि ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित शपथ-ग्रहण संस्कार का ही रूप माना जाये तो कोई हानि नहीं।

योग्य पुरोहित के चयन को इतना अधिक महत्त्व देने के पीछे सूक्ष्मतः विचार करने पर यही तथ्य सामने आता है कि "**अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः**" स्वीकार करने वाली संस्कृति में आरम्भ से ही यज्ञ को सर्वोपरि स्वीकार किया गया है। यज्ञ का वैज्ञानिक महत्त्व भी सुविदित है। अतः किसी भी सुखी-सम्पन्न-सुसंस्कृत राष्ट्र के लिये यज्ञ एवं उसके उचित रीति से सम्पन्न होने में एक सुयोग्य पुरोहित की भूमिका असन्दिग्ध है। अतः एक श्रेष्ठ राज्य की नींव में पुरोहित की स्थिति अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। यही कारण है कि राजा को अपने राज्य में एक योग्य पुरोहित का चयन करना चाहये।

---

[१] अष्टम पंचिका - पंचम अध्याय - प्रथम खण्ड

"न ह वा अपुरोहितस्य राज्ञो देवा अन्नमदन्ति, तस्माद् राजा यक्ष्यमाणो ब्राह्मणं पुरो दधीत, देवा मेऽन्नमदन्निति।"

[२] वही, "तस्य पुरोहित एवाऽऽहवनीयो भवति जाया गार्हपत्यः, त एनं शान्ततनवोऽभिहुता अभिप्रीताः स्वर्गं लोकमभि वहन्ति - क्षत्त्रं च बलं च राष्ट्रं च विशं च।"

कोई भी राष्ट्र यदि वास्तविक रूप में विकसित एवं सुखी-सम्पन्न बनना चाहता है तो वहां के राजाओं-मन्त्रियों-राजनेताओं को ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित इन गुणों को अपने भीतर आत्मसात् करना ही होगा। जो भी राष्ट्र इसकी अवेहलना करेगा, उसका पतन निश्चित है। अतः निःसंकोच कहा जा सकता है कि न केवल भारतवर्ष अपितु समस्त विश्व में ऐसा प्रत्येक कोई राष्ट्र, जो उन्नति के शिखर पर विराजमान होना चाहता है, वहाँ के राजनेताओं को दिशा-निर्देशित करने में यह वर्णन निःसन्देह सहायक सिद्ध होगा।

ऐतरेय ब्राह्मण में प्राण-तत्त्व

डॉ० मौहरसिंह[१]

यज्ञों एवं कर्मकाण्डों के विधान और क्रियाओं के सम्यक् परिज्ञान हेतु ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत की गयी है। इनसे समाज तथा संस्कृति के सम्बन्धों का ज्ञान भी प्राप्त होता है। ये ग्रन्थ अधिकांशतः गद्य में लिखे हुए हैं तथा प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण हैं। प्राचीन ज्ञान के साधनस्वरूप 'वैदिक साहित्य' में 'ऋग्वेद' के बाद 'शतपथ ब्राह्मण' का स्थान आता है। किसी भी युग के साहित्य के मूल में तत्कालीन संस्कृति, आस्थाओं, आदर्शों एवं मूल्यों की अभिव्यक्ति सन्निहित रहती है। ब्राह्मण-साहित्य के अन्तर्दर्शन की पृष्ठभूमि में भी यही भावना निहित रही है। अतः इसी परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए 'ब्रह्मन्' शब्द के निम्न अर्थ किए हैं- १. मन्त्र अर्थात् मन्त्रों की व्याख्या एवं विनियोग प्रस्तुत करना, २. यज्ञ अर्थात् यज्ञ के विषयों का भलीभाँति प्रतिपादन करना तथा ३. रहस्य अर्थात् वैदिक रहस्यों का उद्घाटन करने वाले ही 'ब्राह्मण ग्रन्थ' कहे गये। ऐतरेय ब्राह्मण का सम्बन्ध ऋग्वेद की शाकल शाखा से है । यह ब्राह्मण-ग्रन्थ महीदास ऐतरेय की रचना मानी जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण ४० अध्यायों में विभक्त है। ये ४० अध्याय ८ पञ्जिकाओं में विभक्त है, प्रत्येक पञ्जिका में ५ अध्याय हैं तथा सम्पूर्ण ब्राह्मण में २८५ कण्डिकाएँ हैं। अतः ऐतरेय ब्राह्मण में विविध विषयों के वर्णन प्राप्त होते हैं, तथापि प्रस्तुत शोध-पत्र में प्राणविद्या का विवेचनात्मक अध्ययन ही अपेक्षित है-

प्राण-तत्त्व की व्युत्पत्ति एवं अर्थ -

प्राण के स्वरूप के विषय में अध्ययन करने से पूर्व **'प्राण'** शब्द के निर्वचन एवं व्युत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न विद्वानों के मतों का ज्ञान भी अपेक्षित है। आचार्य यास्क

---

[१] **सहायकाचार्य, संस्कृत-विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार**

ने **असु** (प्राण) का निर्वचन इस प्रकार किया है- **अपि वा असुरिति प्राणानामास्तः शरीरे भवति तेन तद्वन्तः।**[१] अर्थात् वह शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है, इसीलिए असु को प्राण कहा जाता है। **असु क्षेपणे** धातु से प्राणवाचक **असु** शब्द बनता है । इसीलिए प्राण **असु** से युक्त होने पर **असुर** कहलाते हैं। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार **प्राणिति जीवति बहुकालमिति।**[२] अमरकोषकार ने प्राण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि- **प्राण इति प्रसरणेन, अपसरणेन, समन्तात् ऊर्ध्वे व्याप्तया च अनित्यनेन।**[३] आचार्य पाणिनि ने प्राण शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरण सम्मत की है - **प्र** उपसर्ग पूर्वक् **अन् प्राणने** धातु से **अच्** प्रत्यय करके प्राण शब्द सिद्ध होता है। **प्र** उपसर्ग **अन्** धातु से करण अर्थ में **घञ्** प्रत्यय लगाकर भी प्राण शब्द सिद्ध होता है। प्राण का सामान्यतः अर्थ श्वास या वायु किया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राण शब्द के अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं, परन्तु प्राण का अर्थ मुख्यरूप से जीवनधायक- तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है।

प्राण का स्वरूप एवं संख्या -

प्रयाज एवं अनुयाज दोनों भी प्राण हैं, जो शिर में स्थित श्वासादि प्राण हैं, वे (उत्तमाङ्गस्थ होने के कारण प्रकृष्ट होने से) प्रयाज है, और जो नाभि से नीचे अपान वायु है, वे (निकृष्ट होने से) अनुयाज है।[४] जो आतिथ्येष्टि है मानो यज्ञ का शिर है। शिर में सात प्राण अर्थात् इन्द्रियाँ रूप छिद्र हैं। इस प्रकार इन सात पादों को पढ़कर मानों होता यजमान के शिर में सातों प्राणों को रखता है - **सप्त पदानि भवन्ति शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यं सप्त वै शीर्षन् प्राणाः शीर्षेन्नेव तत्प्राणान दधाति।**[५] नौ ऋचाओं के पाठ के द्वारा प्रवर्ग्याभिमानी पुरुष में वह प्राणों को ही स्थापित करता

---

[१] निरुक्त, ३.२.८

[२] शब्दकल्पद्रुम, भाग -३ पृ.सं.३०९

[३] अमरकोष, ३.३.२१

[४] प्राणां वै प्रयाजानुयाजास्ते य इमे शीर्षन् प्राणास्ते प्रयाजा येऽवाञ्चस्तेऽनुयाजाः स योऽत्नानुयाजान् यजेद्यथेमान् प्राणानालुप्य शीर्ष धित्सेताद्दक्तत् । ऐतरेय ब्राह्म्ण, १.३.६

[५] वही, १.३.६

है।[१] इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में प्राणों की संख्या नौ मानी गयी है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि कुछ लोगों का कथन हैं कि प्रयाज (यज्ञ के आरम्भ में दी जाने वाली) आहुतियों से ही, बिना अनुयाज (यज्ञ के अन्त में दी जाने वाली) आहुतियों के, प्रयाणीय इष्टि होनी चाहिए। क्योंकि प्रायणीय इष्टि के अनुयाज में विलम्ब होने से हीनता है।[२] परन्तु प्रयाज और अनुयाज दोनों ही होने चाहिएँ। प्रयाज यजमान के प्राण हैं तो अनुयाज प्रजा हैं। यदि होता प्रजाओं को छोड़ देगा तो यजमान के प्राणों को छोड़ देगा - **प्राणा वै प्रयाजाः प्रजाऽनुयाजायत्प्रयाजानन्तरियात् प्रजां तद्यजमानस्यान्तरियात्।**[३]

उक्त प्राणों में से कुछ प्राण नाभि के ऊपर चलते हैं और कुछ नीचे की ओर चलते हैं। इसीलिए वेन शब्द का अर्थ नाभि है और यह नाभि प्राण को धारण करने के कारण स्वयं प्राण रूप है। यही नाभि का नाभित्व है - **वेनोऽमाद्वा ऊर्ध्वा अन्ये प्राणा वेनन्त्यवाञ्चोऽन्ये तस्माद्वेनः प्राणो वा अयं सन्नाभेरिति तस्मान्नाभिस्तन्नाभिस्तन्नाभेर्नाभित्वं प्राणवास्मिंस्तद्दधाति।**[४]

जब होता वायु-देवताक तृच का पाठ करता है। इसीलिए अभिज्ञजन कहते हैं कि वायु प्राण है, प्राण वीर्य है। मनुष्य के शरीर में सर्वप्रथम वीर्य की उत्पत्ति होती है, तत्पश्चात् मानव जन्म लेता है। इस प्रकार जो वायु के मन्त्रों का पाठ करता है, उससे यजमान के प्राण संस्कारित होते हैं। वह इन्द्र और वायु के मन्त्रों का पाठ इसीलिए करता है, क्योंकि जहाँ (उच्छ्वासरूप) प्राण हैं, वहाँ (निश्वासरूप) अपान है। इनके पढ़ने से यजमान के प्राण और अपान का संस्कार होता है - **वायव्यं शंसति तस्मादाहुर्वायुः प्राणः प्राणो रेतो रेतः पुरुषस्य प्रथमं सम्भवतः संभवतीति यद्वायव्यं शंसति प्राणमेवास्य तत्संस्करोति। ऐन्द्रवायवं शंसति यत्र वाव प्राणस्तदपानो यदैन्द्रवायवं शंसति प्राणापानावेवास्या तत्संस्करोति।**[५]

---

[१] वही, स्रक्के द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्निति नव पावमान्यो नव वै प्राणाः प्राणानेवास्मिंस्दद्दधाति॥ वही, १.४.३

[२] प्रयाजवदननुयाजं कर्त्तव्यं प्रायणीयमित्याहुर्हीनमिव वा एतदीङ्खितमिव यत्प्रायणीयस्यानुयाजा इति। वही,१.२.५

[३] वही, ३.१.१५

[४] वही, १.४.३

[५]वही, ३.११.२

सम्पूर्ण जगत् के जीव प्राण पाकर ही गतिमान हैं। अतः होता प्राण धारण करता है और प्राणों को सुसंस्कृत करता है। प्राण अपान के द्वारा ही नियन्त्रित होता है और पीछे नहीं लौट सकता। इस प्रकार वह अपान को उत्पन्न करता हुआ अपान का संस्कार करता है।[१] प्रायणीय (श्वास) प्राण हैं तथा उदयनीय उदान (निःश्वास) है (इन दोनों कर्मों में याज्या और अनुवाक्या के प्रयोगार्थ एक ही) होता समान है, क्योंकि प्राण और उदान (वायुविशेष होने से) समान ही है। वस्तुतः प्राणवायु तो कार्यक्षमता के लिए होती है और वह (प्राण-उदान में भेद) ज्ञान के लिए होती है - **प्राणो वै प्रायणीय उदान उदयनीयः समानो होता भवति समानौ हि प्राणोदानौ प्राणानां क्लृप्त्यै प्राणानां प्रतिप्रज्ञात्यै।**[२]

देवताओं का जो सोम है, वह भी प्राण है। उसे एक ही पात्र से ग्रहण करते हैं, क्योंकि सब प्राण एक ही हैं।[३] ऐतरेय ब्राह्मण मे अनेक रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं, जिनसे सुन्दर शिक्षाएँ मिलती है। राजा हरिश्चन्द्र और शुनःशेप की कथाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ऐतरेय ब्राह्मण कहा गया है कि प्राण नौ हैं। जैसा कि सोमराज के आने पर आतिथ्य हवि तैयार की जाती है। जब सोमराज यजमान के घरों पर आता है तब उसके लिए यह आतिथ्य हवि तैयार की जाती है। इसीलिए इसको आतिथ्य हवि कहते हैं। यह पुरोडाश नौ कपालों में तैयार होता है। प्राणों के बनाने और प्राणों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह पुरोडाश विष्णु का होता है, क्योंकि विष्णु ही यज्ञ है।[४]

ऋतुयाज भी प्राण हैं, जो ऋतु याज करते हैं। अर्थात् जो ऋतुओं के लिए आहुतियाँ देते हैं। वे यजमान को प्राण धारण कराते हैं। ऋतुना शब्द से आरम्भ होते हुए ऋतुओं के छः मन्त्र बोलकर यजमान में प्राण धारण कराते हैं - **तृतीयं षड्हमुपयन्त्यष्टादशाहानि भवन्ति तानि द्वेधा नवान्यानि नवान्यानि नव वै प्राणा नव स्वर्गा लोकाः प्राणांश्चैव तत्स्वर्गांश्च लोकानाप्नुवन्ति प्राणेषु चैव तत्स्वर्गेषु च लोकेषु प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।**[५]

---

[१] वही, ५.२.४०

[२] वही, १.२.१

[३] वही, ४.२.२७

[४] ऐतरेय ब्राह्मण, २.१.११

[५] वही, ४.१८.२

ऐतरेय ब्राह्मण में जिस **प्रउगशस्त्र** का उल्लेख किया है, वह (शिरोगत सात छिद्रों से युक्त) प्राणों के लिए ही है। जब होता के द्वारा वायु आदि सात देवों के लिए मन्त्र पढ़े जाते हैं। वस्तुतः वे शिर में स्थित सात प्राणों की विद्यमानता को द्योतित करते हैं। अर्थात् इनका पाठ मानों होता (यजमान के) के शिर में सात प्राणों को रखता है - **प्राणानां वा एतदुक्थं यत्प्रउगं सप्त देवताः शंसति सप्त वै शीर्षन् प्राणाः शीर्षन्नेव तत्प्राणान् दधाति।**[१]

अग्निहोत्र एवं आदित्य और प्राण -

आदित्य उदित होते ही सभी प्राणियों को गति प्रदान करते हैं, इसीलिए इसको प्राण कहा जाता है। जो इस प्रकार जानते हुए सूर्योदय होने पर होम करता है, उसकी आहुतियाँ प्राणरूप आदित्य में भलीभाँति हुत होती हैं। अतः सूर्योदय के पश्चात् ही होम करना चाहिए - **उद्यन्नु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्रणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते प्राणे हास्य सम्प्रति हुतं भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति तस्मनादुदिते होतव्यम्।**[२] **आदित्याय वा एष प्रातराहुत्या महाव्रतमुपाकरोति तत्प्राणः प्रतिगुणात्यन्नमन्नमिति।**[३]

ऐतरेय ब्राह्मण में प्राणों को समिधा कहने के पश्चात् तनूनपात् भी कहा जाता है। यहीं तनूनपात् का निर्वचन भी किया गया है। प्राण तनूनपात् है, क्योंकि वह शरीर की रक्षा करता है। प्रस्तुत शब्द के निर्वचन में तनू शब्द के साथ रक्षणार्थक वा धातु के प्रयोग से निर्वचन स्पष्ट है। इसमें नपात् का न अव्याख्यात है। ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि को जातवेदस् कहलाने के विषय में निम्नलिखित आख्यान प्राप्त होता है कि प्रजापति ने जो प्रजा बनाई वह किसी कारण मुँह फेर कर चली गयी, तब अग्नि ने उसको चारों ओर से घेर लिया। प्रजापति बोले कि इन उत्पन्न हुई प्रजाओं को मैंने इस अग्नि के द्वारा पाया। उत्पन्न प्रजाओं को प्राप्त कराने वाला वह अग्नि जातवेदस् है- **प्रजापतिः प्रजा असृजतताः सृष्टाः पराच्य, एवाऽऽयन्नव्यावर्तन्त ता अग्निना पर्यगच्छता अग्निमुपावर्तन्त तेमावाद्याप्युपावृत्ताः, सोब्रवीज्जाता वै प्रजा**

[१] वही, ३.११.३

[२] वही, ५.५.६

[३] वही, ५.५.३

अनेनाविदमिति तज्जात वेदस्यमभवतज्जातवेदसो जातवेदस्त्वम्।[१] ऐतरेय ब्राह्मण में प्राण को जातवेदस् भी कहा है - **प्राणा वै जातवेदाः सहि जातानां वेदाः।** अतः प्राण जातवेदस् इसीलिए है कि वे उत्पन्न हुओं को जानते हैं। यहाँ **विद् ज्ञाने** से जातवेदस् शब्द निष्पन्न है।

ऐतरेय ब्राह्मण में आज्यशास्त्र का वर्णन करते हुए यन्त शब्द का निर्वचन है- **स यन्ता विप्र एषामिति शंसत्यपानो वै यन्ताऽपानेन ह्ययं यतः प्राणो न पराङ् भवति।** वह नियमन करने वाला इनका विप्र है। अपान ही यन्ता (नियमित करने वाला) है। अपान से ही नियमित यह प्राण दूर नहीं जाता है। यहाँ यन्ता का सम्बन्ध वन्तात रूप यतः है। यतः के द्वारा यम् धातु का निर्देश किया गया प्रतीत होता है।[२]

ऐतरेय ब्राह्मण में प्राण को समिधा भी कहा गया है। प्राण ही इस जगत् को प्रज्वलित करने वाले हैं। प्राण ही तनूनपात् हैं, क्योंकि वह तनू अर्थात् शरीर की पाति अर्थात् रक्षा करता है। इस प्रकार वह प्राणों को संतुष्ट करता है और प्राण ही यजमान धारण करता है। प्राण और अपान दिव्य होता है। प्राण, अपान और व्यान तीन देवियाँ हैं।[३] ऐतरेय ब्राह्मण में यन्ता का निर्वचन पुनः इस प्रकार किया है- **वायुर्वै यन्ता वायुना हीदं यतमन्तरिक्षं न समृच्छति**। यहाँ भी उसी प्रकार यन्ता का सम्बन्ध यतः से है। यहाँ यम् धातु से यह शब्द निष्पन्न है। यन्तृ-अपानवायु वाचक यन्तृ का निर्वचन वायु सीमधः की निरुक्ति भी दी गयी है - **प्राणा वै समिधः प्राणा हीदं सर्वं सीमन्धते**।[४] प्राण ही समिधाएँ हैं, क्योंकि प्राण ही इस सबको दीप्त करते हैं। इस प्रकार समिन्धते क्रिया से सम्बन्ध होने से समिध की निरुक्ति स्पष्ट है। प्राण के अर्थ में समिधः के साथ इन्ध का प्रयोग लाक्षणिक प्रतीत होता है। प्राण सब कुछ प्रदीप्त करते हैं अर्थात् प्राणों के द्वारा ही प्राणी अपने जीवित रूप में प्रकट होते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण में एक स्थान पर प्राण को ऋषि कहा गया है, इसमें ऋषि का अर्थ प्राण कहा है। कैसे? ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि **प्राणा वा ऋषयो देव्यासः।** अतः स्पष्ट है कि प्राणों को ऋषि भी कहते हैं। इसका दूसरा अर्थ है कि

---

[१] वही, १३.१२

[२] वही, १०.९

[३] वही, १.२.४

[४] वही, ९.१०

जगत् के कारण प्रकृति में जो प्राण हैं, उनको प्राचीन तथा उसके कार्य में जो प्राण हैं उनको नवीन कहते हैं। इसीलिए सभी विद्वानों को उन्हीं प्राणरूप ऋषियों के साथ योगाभ्यास करते हुए अग्नि नामक परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी योग्य है।[१]

उपसंहार

इस प्रकार यह प्राण यथायोग्य नियमित रूप से कार्य करते हुए आनन्द प्रदान करते हैं। ये सभी प्राण प्रीतिपूर्वक प्राणी मात्र की सेवा करते हैं। केवल मानव के शरीर में ही नहीं अपितु पशु-पक्षी, कृमि, कीट, पतंग, वृक्ष, वनस्पति, औषधि आदि के शरीर में भी प्राण ही जीवन धारण किए हुए हैं। ये सभी प्राण के द्वारा ही गतिशील बने हुए हैं। ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड दोनों में एक रूपता है। जो पिण्ड में हैं, वही ब्रह्माण्ड में स्थित है तथा जो ब्रह्माण्ड में है वही शरीर में है। एक प्राणतत्त्व पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड में समान रूप से व्याप्त है, जिससे कि यह चेतन जगत् तथा अचेतन जगत् गतिशील है।

[१] वही, २.४.३

ऐतरेय ब्राह्मण में अग्निषोमीय पश्वालम्भन का विज्ञान

डा० जगमोहन[१]

ऐतरेय ब्राह्मण की प्रथम छः पंचिकाओं में सोमयाग का वर्णन है। अन्तिम दो पञ्चिकाओं में राज्याभिषेक का कथन है।[२]

सोमयाग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं जटिल कृत्य है। इसकी प्रधान हवि सोम नामक लता का रस है। अतः इसको सोमयाग का नाम दिया गया है। इसके भेद एवं प्रभेदों की संख्या शतकों तक पहुंचती है।

सोमयाग के चार प्रकार है – एकाह, अहीन साद्यस्क्र तथा सत्र।

जिस सोमयाग का अनुष्ठान एक दिन में किया जाता है। उसे एकाह कहते है। दो दिन से ग्यारह दिन तक आवृत्ति करके संपन्न किया जाने वाला सोमयाग अहीन कहलाता है। तेरह दिन से हजारों वर्षो तक किया जाने वाला सोमयाग सत्र कहलाता है। बारह दिन में संपन्न होने वाला सोमयाग अहीन भी है और सत्र भी।

एकाह, अहीन और सत्र संज्ञायें सुत्यादिवस अर्थात् सोम का रस निचोडने की अपेक्षा से है। जैसे एकाह सोमयाग में एक दिन सोम का रस निचोडा जाता है, किन्तु यह पञ्च दिवसों में संपन्न होता है। सुत्यादिवस से पूर्व चार दिन तक आनुषङ्गिक इष्टियां तथा सोम के अभिषव की तैयारी की जाती है।[३]

---

[१] **सहायकाचार्य, संस्कृतविभाग, हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली**

[२] पं. भगवद्दत्त वैदिक वाङ्मय का इतिहास, तृतीय भाग, ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ पृ.११

[३] श्रौत यज्ञों का संक्षिप्त परिचय, प.युधिष्ठिर मीमांसक विजयपाल विद्यावारिधि रामलाल कपूर सोनीपत, हरयाणा पृ.१२१

जब भी सोमयाग अश्वमेध आदि बडे यागों की बात होती है तो प्रत्येक जिज्ञासु के मन में यह प्रश्न हमेशा उत्पन्न होता है कि इतने विशाल, जटिल एवं विपुल हव्य साध्य कर्मकाण्ड का प्रयोजन क्या है।

इस विषय में आचार्य विजयपाल विद्यावारिधि का कथन विशेष उल्लेखनीय है। वे लिखते है कि आधुनिक गवेषकों ने इस प्रश्न के समाधान के लिये अनेक कल्पनायें प्रस्तुत की हैं –

किन्हीं का कथन है कि देवों के प्रकोप को शान्त करने के लिए इन कृत्यों का अनुष्ठान किया जाता है। दूसरों का मत है कि किसी विशिष्ट पशु या औषधि में दैवी शक्ति तथा पाप-मोचन का सामर्थ्य होता है। देव के साथ ऐक्य प्राप्ति करने के उद्देश्य से इन कर्मों का अनुष्ठान किया जाता है। कुछ अन्य लोगों के मतानुसार ऐहिक समृद्धि तथा पारलौकिक सुख को प्राप्त करने के लिये देवों का अनुष्ठान किया जाता है। एक अन्य पक्ष के अनुसार इन कृत्यों के द्वारा देवों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाती है।

याज्ञिकों की मान्यता है कि अग्नि आदि विग्रहवती देवतायें अनुष्ठाता के आह्वान पर यज्ञ में उपस्थित होती है और आहुति प्राप्त करके अनुष्ठाताओं की कामनाओं को पूर्ण करती है।

मीमांसकों के अनुसार इन यागों से अपूर्व की उत्पत्ति होती है। अपूर्व एक अदृष्ट संस्कार है। जो अनुष्ठाता (आत्मा) को कालान्तर में (मृत्यु के पश्चात्) स्वर्गादि से युक्त कर देता है। पं.युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इन यज्ञरूपी नाटकों में अभिनीत प्रत्येक क्रिया किसी न किसी सृष्टि रहस्य को प्रदर्शित करती है। इन में से कुछ रहस्यों की ओर ब्राह्मण ग्रन्थों ने संकेत किये है। परन्तु अनेक कृत्यों की व्याख्याएं अभी भविष्य के गर्भ में निहित हैं।[१]

---

[१] श्रौत यज्ञों का संक्षिप्त परिचय, प.युधिष्ठिर मीमांसक विजयपाल विद्यावारिधि रामलाल कपूर सोनीपत, हरयाणा पृ.२०१

पं.युधिष्ठिर मीमांसक की इस स्थापना की व्याख्या के विस्तार को हम पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी के प्रतिपादनों में देख सकते है। जिसमें उन्होंने सोमयागादि संपूर्ण कर्मकाण्ड को शिशु के निर्माण से लेकर समृद्ध समाज के निर्माण तक मे पर्यवसित किया है। इस संदर्भ में उनका अद्भुत कुमार संभव नामक आलेख विशेष रूप से ध्यातव्य है। उनके मत में यज्ञिय कर्मकाण्डों में किसी न किसी रूप में हमारे जीवन को श्रेष्ठ एवं उत्तम बनाने का भाव एवं संदेश छिपा हुआ है इसी दृष्टि को रखकर उन्होंने शतपथ ब्राह्मण में वर्णित दर्शपौर्णमास याग की व्याख्या पौर्णमास = उत्तम पुरुष को बनाने के लिये सन्तान को आरम्भ से लेकर किन अवस्थाओं में से गुजारना पडता है। किस किस समय माता पिता क्या कर्तव्य है इत्यादि विषयपरक इन यज्ञों की व्यावहारिक एवं सामाजिक संदर्भपरक व्याख्या प्रस्तुत की है। और यहीं दृष्टि किसी न किसी रूप में ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रति हमारी अध्ययन की रुचि एवं श्रद्धा को बढाती है। आज इस वैज्ञानिक युग में देव आराधन मात्र परक व्याख्या प्रस्तुत करके आप वैदिक वाङ्मय की प्रतिष्ठा नहीं कर सकते हैं।

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी की इसी दृष्टि को सामने रखकर सोमयाग के चतुर्थ दिन संपन्न किये जाने अग्निषोमीय पश्वालम्भन के विज्ञान को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सोमयाग जिसका मुख्य फल स्वर्ग प्राप्ति बताया गया है, इस याग के चतुर्थ दिन अग्निषोमीय पशु के आलम्भन का वर्णन है। पश्वालम्भन के विषय में यह सत्य है कि भारतीय इतिहास में एक काल खण्ड ऐसा अवश्य रूपेण विद्यमान था, जब यज्ञों में पशुओं की आहुतियां प्रदान की जाती थी। जिसका संकेत महाभारत में प्राप्त होता है-

लुब्धैर्वित्तपरैर्ब्रह्मन् नास्तिकैः संप्रवर्तितम्।
वेदवादानविज्ञाय सत्याभासमिवानृतम्॥[१]

[१] महाभारत शान्तिपर्व २६३.६

अतएव स्वामी समर्पणानन्द जी का यह कथन कि यज्ञों की यज्ञशाला-यज्ञशाला नहीं प्रतीत होती किन्तु सौनिकामा दीख पडती है। जिसको देखकर चार्वाक ने इन यज्ञों के विरोध में जो हुंकार भरी वह अत्यन्त स्वाभाविक थी कि यदि यज्ञ में मारे जाने के बाद पशु स्वर्ग लोक को जाता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मारता है। जिससे उसके पिता को स्वर्ग की प्राप्ति हो जाये।

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।

स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हन्यते॥

वर्तमान समय में भी दक्षिण भारत के जिन स्थानों पर इन यागों को संपन्न किया जाता है। वहां कुछ याज्ञिक साक्षात् पशु अङ्गों की आहुति प्रदान करते है। परन्तु कुछ हांडी में घी भरकर उसी से पशु विधियां करते है ऐसा इन यज्ञों के प्रत्यक्ष द्रष्टा आचार्य विजयपाल विद्यावारिधि जी का कथन है।[१]

ऐतरेय ब्राह्मण में इस पश्वालम्भन के विषय में कहा गया है कि दीक्षित अर्थात् यजमान जो अग्निषोमीय पशु का आलम्भन करता है। वह वास्तव में स्वयं का ही आलम्भन करता है।[२]

यहाँ पर विचारणीय यह है कि यह सम्पूर्ण जगत् ही अग्नि एवं सोम से युक्त है जैसा कि कहा भी जाता है कि **अग्निसोमात्मकं जगत्**। तब आलम्भन के लिये अग्नि एवं सोम से युक्त पशु को ही याग में क्यों लाया जाता है। किसी अन्य वस्तु को क्यों नहीं लाया जाता है। यह स्वयं इस बात का प्रतीक है कि इस विधि में ब्राह्मण का कुछ विशेष अभिप्राय है। ब्राह्मणों की प्रतिपादन शैली ही ऐसी है कि वे अपने कथ्य को साक्षात् या प्रत्यक्ष रूप में न कहकर प्रत्यक्ष वस्तु, क्रिया एवं पदार्थों के द्वारा अभिनीत

---

[१] श्रौत यज्ञों का संक्षिप्त परिचय, प. युधिष्ठिर मीमांसक विजयपाल विद्यावारिधि रामलाल कपूर सोनीपत, हरयाणा पृ.१३८ ,१९०

[२] स यदग्नीषोमीयं पशुमालभते सर्वाभ्य एव देवताभ्यो यजमान आत्मानं निष्क्रीणीते ऐतरेय ब्राह्मण २.६.३

करके परोक्ष रहस्य को प्रस्तुत करते है। जैसा कि शतपथकार कहते है कि देव लोग प्रत्यक्ष नहीं किन्तु परोक्षप्रिय होते हैं।[1]

अब विचारणीय यह है कि यहाँ पशु किसका प्रतीक है? पशु प्रतीक है – अज्ञानता का, अनियमितता का एवं अधर्म का। मनुष्य एवं पशु में मुख्य अन्तर ही धर्म का है। जैसा कि कहा भी गया है कि **धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः**। जब तक मनुष्य अपने पाशविक आचरणों एवं अधार्मिक भावनाओं का परित्याग नहीं कर देता तब तक वह निरा पशु ही है। और जब तक पशु वध नहीं होगा तब तक अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकेगा। और जब तक अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं होगा तब तक उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होगी। अतएव यह पशु यजमान की पाशविक भावनाओं का प्रतीक है। वह पशुवध के अभिनय के द्वारा अपनी पाशविक प्रवृतियों के वध की प्रेरणा प्रदान करता है।

पशु को शामित्र प्रदेश (वह स्थान जहां पर उसका वध करना है) को ले जाया जाता है। पशु को के जाते समय एक व्यक्ति अग्नि को लेकर पशु के आगे आगे चलता है। यहाँ पर आख्यायिका के माध्यम से यह बताया गया है कि जब देव लोग पशु को शामित्र प्रदेश को ले जा रहे थे तो उस समय पशु ने प्रत्यक्ष रूप में मृत्यु को देख लिया एवं उसने कहा कि मैं आप लोगों के साथ नहीं जा सकता हूं। तब देवों ने उससे कहा कि तुम हमारे साथ आओ। हम सब तुम्हारे साथ स्वर्ग जा रहे हैं। पुनः उसने कहा कि तुम में से कोई मेरे आगे आगे चलो। उसके पश्चात् अग्नि देव पशु के आगे आगे चले। इसीलिए पशु के आगे अग्नि को ले जाया रहा है।

अब यहाँ पर विचारणीय यह कि इस आख्यायिका का क्या अभिप्राय है। इसके द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थ दीक्षित को समझाने का प्रयास कर रहा है कि एक सामान्य पशु भी मृत्यु के बारे में जानता है। वह भी मृत्यु को प्राप्त करना नहीं चाहता है। वह भी स्वर्ग प्राप्त करना चाहता है। वह भी चाहता है कि कोई उसे स्वर्ग तक पहुंचा दे।

---

[1] परोक्ष प्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षं द्विषः। शतपथ १४.६.११.२

अतएव वह अग्नि देव पर विश्वास करके अग्नि देव के पीछे पीछे चल पडता है।[१]

दीक्षित तो मनुष्य है, विचारशील है उसे भी मृत्युरूपी जन्म-मरण के चक्र से बचने के लिए उसे इस संसार की निस्सारता को समझना होगा। उसे विद्वानों का सङ्ग करना होगा। उसके पश्चात् अपनी ज्ञानाग्नि एवं संकल्परूपी अग्निदेव को आगे करके हमेशा आगे बढ़ना होगा। अग्नि देव किसी गुरु मार्गदर्शक का भी प्रतीक है जिसको आगे करके दीक्षित को स्वर्ग की ओर सतत प्रयास करना होगा।

तदनन्तर संज्ञपन स्थान पर ले जाने के पश्चात् पशु के नीचे कुश को बिछाया जाता है। क्योंकि घास, कुश आदि ओषधि के सेवन से ही पशु के शरीर का निर्माण होता है।[२] यहाँ इस अभिनय के द्वारा यजमान को यह बताया जा रहा है कि तुम्हारे एवं पशु के शरीर में कोई अन्तर नहीं है। जैसे घासादि औषधियों के सेवन से पशु के शरीर का निर्माण होता है। उसी प्रकार दीक्षित यजमान का भी शरीर यहाँ औषधियों से परिपुष्ट हुआ है। अर्थात् मनुष्य शरीर को प्राप्त करने मात्र से स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सकता है। उसके लिए तपश्चर्या पूर्ण जीवन व्यतीत करना होगा।

उसके पश्चात् के माता पिता एवं संबन्धियों से अनुमति का वर्णन है।[३] इस विधि के द्वारा दीक्षित यजमान को यह समझाया गया है कि अपने माता पिता एवं सगे संबन्धियों के दायित्वों को पूरा करना आवश्यक है। इन दायित्वों को पूर्ण करके उनसे अनुमति लेकर आप स्वर्ग के अधिकारी बन सकते है। अर्थात् लौकिक दायित्वों को पूर्ण करते हुए जीवों के लिए सृष्टि निर्माण के उद्देश्य को स्वर्ग = मोक्ष को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ना है।

---

[१] पशुर्वै नीयमानः स मृत्युं प्रापश्यत् स देवान् नान्वकामयतैतुं तं देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमिष्याम इति - ऐतरेय ब्राह्मण २.६.६

[२] स्तृणीत बर्हिरित्योषध्यात्मा वै पशुः पशुमेव तत्सर्वात्मानं करोति ऐतरेय ब्राह्मण २.६.६

[३] अन्वेनं माता मन्यतामनु पिताऽनुभ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्य इति जनित्रैरेवैनं तत्समनुमतमालभन्ते ऐतरेय ब्राह्मण २.६.६

अग्रिम चरण में पशु के चक्षु, प्राण एवं श्रोत्रादि अङ्गों को सूर्य, वायु, दिग् आदि देवताओं के लोक में प्रतिष्ठापित करने की प्रार्थना की गयी है।[१] इस प्रार्थना के द्वारा दीक्षित यजमान को समझाया जा रहा है कि जब तक सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों को परमात्मा के प्रति समर्पित करके उनकी भक्ति एवं उपासना नहीं की जायेगी। तब तक स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती है। केवल मन से अच्छे संकल्प लेने से काम नहीं चलेगा अपितु शरीर के प्रत्येक अङ्ग से परमात्मा का श्रवण, मनन निदिध्यासन करना पडेगा। तभी स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है अन्यथा नहीं।

इसी प्रकरण में सायण पशुहिंसा की बात करते है। यहाँ पर स्वार्थी लोगों में द्वन्द्व उत्पन्न होता है जो उनको इस रहस्यात्मक पशु इष्टि से दूर ले जाकर अज आदि पशुओं के वध में उनके ध्यान को केन्द्रित करता है। जिनसे वे इनके वध में प्रवृत्त होते है।

क्या ब्राह्मण ग्रन्थ का साक्षात् पशु का वध करने में अभिप्राय है? ऐसा सोचना ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रति अन्याय ही कहा जा सकता है। क्योंकि तुरन्त इसके पश्चात् पशुपुरोडाश का वर्णन किया गया है। जो पशु की आकृति के सदृश व्रीहि का बनाया जाता है। यहाँ पर आख्यायिका के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि यज्ञयोग्य हवि पुरुष, अश्व, गौ, अज, अवि आदि न होकर व्रीहि आदि औषधियां ही हैं।[२] यदि पशु के वध में ब्राह्मण का अभिप्राय होता तो तुरन्त इसके पश्चात् पशुपुरोडाश की कल्पना का कोई औचित्य नहीं रह जाता है।

स्वयं ऐतरेय ब्राह्मण का वचन है –**स वा एष पशुरेव वाऽऽलभ्यते यत्पुरोडाशः।**[३]

---

[१] सूर्यं चक्षुर्गमयताम् वातं प्राणमन्ववसृजतादन्तरिक्षमसुं दिशः श्रोत्रं पृथिवीं शरीरमित्येष्वेवैनं तल्लोकेष्वादधाति इति ऐतरेय ब्राह्मण २.६.६

[२] ऐतरेय ब्राह्मण २.६.८

[३] ऐतरेय ब्राह्मण २.६.९

इस पशु पुरोडाश के अङ्गों की यज्ञ में आहुति प्रदान कर यहीं भाव यजमान में प्रतिष्ठित करना चाहता है कि यजमान को अपने अन्दर के पशुत्व को ज्ञान, तप, त्याग रूपी अग्नि में जलाकर भस्म करना है। इस शरीर का एकैक अङ्ग जब तक परमात्मा के प्रति समर्पित नहीं होगा तब तक स्वर्ग प्राप्ति नहीं हो सकती है। अतः इस तन मन को परमात्मा के ध्यान, स्तुति, प्रार्थना और उपासना में लगाना होगा, तभी स्वर्ग प्राप्ति हो सकती है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ऐतरेय ब्राह्मण में इस पश्वालम्भन के अभिनय के द्वारा दीक्षित को अपनी पाशविक भावनाओं के वध का रहस्य समझाया गया है।

संस्कृतवाङ्मये प्राणिविज्ञान-तत्त्वानि

डॉ० बृहस्पतिमिश्रः[1]

संसारं नाम चराचराणां पदार्थानां संग्रहः[2]। चरा अर्थात् चेतनशीलाः प्राणिनः[3]। अस्माकं भारतीयमनीषायाम् एषा प्रसिद्धिः यत् चतुरशीति-कोटिप्रकारकाः प्राणिनः संसारे भवन्ति। तेषां चतुर्विधाः विभागाः सन्ति उद्भिजः स्वेदजः अण्डजः चेतनशीलानां चतुर्षु विभागेषु - उद्भिजः इत्यत्र वृक्षाः लतापादपादयः, स्वेदजः इत्यत्र यूकाः मत्कुणादयः, अण्डजः इत्यत्र पक्षिणः सृरीसृपजलचरादयः, जरायुजः इत्यत्र मानवाः, स्तनपायिनः गृहीताः भवन्ति।

एतत् वैदिकऋषीणामनुचराणां भारतीयानां वैशिष्ट्यं यत् ते वृक्षेष्वपि चेतनत्वं स्वीकुर्वन्ति एतत् च आधुनिकशिक्षाप्रवीणः भारतीयसिद्धान्तेषु श्रद्धावान् श्रीजगदीशचन्द्रबसुमहोदयः केवलेन एकेन 'शस्यम्' (हिंसायोग्यम्) इति शब्देन स्वानुसन्धानैः बहुविधं प्रदर्शनं कृत्वा समग्रस्य विश्वस्य अग्रे सिद्धं कृतवान् यत् वृक्षाः पादपाः वा सचेतनाः भवन्ति, अस्मद्दृशाः एव भावनया भाविताः भवन्ति। मनुस्मृतिः "अर्धचेतनाः भवन्त्येते, सुखदुःखसमन्विताः।" इति प्रमाणयति[5]।

---

[1] **प्राध्यापकः, श्रीशक्तिसंस्कृतमहाविद्यालयः, श्रीनयनादेवी, बिलासपुरम्, हि०प्र०**

[2] यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव॥ (यजु. - २३.३)

[3] क. यथा कर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम्। (मनु. १.४१)
ख. भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः (मनु. १.६६)

[4] मनु. १.४३, ४४, ४५, ४६। तुलनीयं "चतुर्विधो भूतग्रामो स्वेदजाण्डजोद्भिजजरायुजश्च" (हस्त्यायुर्वेदः शल्यस्थानं द्वादशोऽध्यायः)

[5] मनु. १.४६ , तुलनीयं - चरकसंहितायाम् "सेन्द्रियं चेतनद्रव्यं निरेन्द्रियमचेतनम्, अत्र सेन्द्रियत्वेन वृक्षादीनामपि चेतनत्वं बोद्धव्यम्" इति।

एतत् प्राणिविज्ञानम् वेदानुसारि भवति चेत् आध्यात्मिकमाधिभौतिकं उद्देश्यद्वयमपि साधयति। यतोहि आधुनिकाः केवलं प्राणिनां भेदोपभेदैः आकारप्रकारैः भोजनावाससन्ततिविवेचनैः एव सन्तुष्टाः। किन्तु वैदिकाः न केवलं सन्तुष्टाः अपितु ते तु कथं प्राणिनः प्राणवन्तः? किमेतत्? कथमागच्छति? कुतः आगच्छति? कथम्? किमर्थम् शरीरम् धारयति इत्यादिविषयेषु अपि जिज्ञासामुत्पाद्य समाधान प्रस्तुवन्ति[१]।

वेदा सर्वासां सत्यविद्यानाम् आधाराः सन्ति[२]। सर्वेषां विज्ञानानां मूलम् एते एव[३]। सर्वेषां मूलबीजानि वेदमन्त्रेषु उपलभ्यन्ते। पुनश्च मूलबीजानि व्याख्याग्रन्थेषु प्ररूढानि[४]। तदन्तरं कैश्चित् अशेषशेमुषीविद्भिः पृथक्-पृथक् ग्रन्थाः रचिताः। पुनः तस्यामेव विज्ञानस्य परम्परायां पृथक्-पृथक् शाखामधिकृत्य सूक्ष्मरूपेण विद्वद्भिः शास्त्राणि रचितानि। वेदेषु मूलरूपेण वर्णनं प्राप्यते। क्वचिदुपमा माध्यमेन क्वचिदुपाङ्गरूपेण, क्वचिच्च उपदेशमाध्यमेन उपलब्धाः भवन्ति[५]। प्राणिविज्ञानस्य अपि विकीर्णाः गूढाः अंशाः रहस्यरूपेण मन्त्रेषु उपलभ्यन्ते। निदर्शनमेतत् किञ्चित् –

क. "वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तितिरीञ्छरदे वर्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विकरान्"[६]।

अर्थात् सुनिश्चितेषु एव ऋतुषु विशिष्टाः पक्षिणः प्रामुख्येन सन्ततिं वर्धयन्ति।

ख. "भूम्या आखूनालभते अन्तरिक्षाय प्राङ्क्तान् दिवे क्रशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः।"[७]

इत्यादि बहुविधप्रकारैः पशुपक्षिणाम् स्वभावव्यवहारादीनां वर्णनं प्राप्यते[८]। एवमेव

---

[१] केनोपनिषद् १-१, छांदोग्योपनिषद् ६.१२

[२] स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः - मनु. २७

[३] आर्यसमाजस्य तृतीयः नियमः।

[४] निरुक्तम् प्रथमोध्याये षष्ठः पादः

[५] अर्थवेदः १२.१.२७, २.६.१, ८.८.१४, ऋग्वेद १०.१४६.२, ३, १०.२६.१

[६] यजु. २४.२०

[७] यजुर्वेदः २४.२६

[८] अथर्ववेदः २.३१.३, ३.१४.४, यजुर्वेदः २५.३२, ऋग्वेदः ७.१०३.४, ७.१०३.६

ऋषयः वनस्पतिनां वर्गीकरणोपयोगिताऽऽदीनां ज्ञानमपि प्रचुरतया[१] वितरन्ति ॥

ग. "प्रस्तृणतौ स्तम्बिनीरेकशुङ्गा प्रतन्वतीरोषधीरावदामि"........[२]

एतेषाम् एव विषयाणां कालान्तरे ज्ञानग्रहणशक्तिदुर्बलत्वात् व्याख्याग्रन्थानां निर्माणं ऋषिकल्पैः विद्वद्भिः कृतम्। जन्तुविज्ञानं वनस्पतिविज्ञानं इति पृथक-पृथक् विषयमधिकृत्य शास्त्राणि रचितानि।

वनस्पतिविज्ञानस्य अधुना उपलभ्यमानेषु प्रामाणिकग्रन्थेषु वृक्षायुर्वेदस्य एव केचन अंशाः उपलब्धाः भवन्ति तथा च अङ्गभूतरूपेण बृहत्संहितायाम्[३], आयुर्वेदग्रन्थेषु चरकसंहितासुश्रुतसंहिताऽऽदिषु[४] अपि गूढरूपेण वर्णनं प्राप्यते। वृक्षायुर्वेदविषये एव प्राचीनशास्त्राभिमानी प्रसिद्धः आयुर्वेदविशेषज्ञः श्रीप्रियव्रतशर्मा विविधेभ्यः आयुर्वेदशास्त्रेभ्य: सारं गृहीत्वा (तदनुसारं पञ्चत्रिंशत् आयुर्वेदग्रन्थेभ्यः पुष्पविषयकं वर्णनं संगृहीतवान्) 'पुष्पायुर्वेद'-इति ग्रन्थं ग्रथितवान्। शार्ङ्गधरपद्धति-इति चिकित्साग्रन्थे 'उपवनविनोद'-इति नाम्ना पुष्पादिविषये वर्णनम् अस्ति। आचार्यराघवभट्टस्य 'वृक्षायुर्वेद'-इति अस्ति इत्यपि ज्ञायते[५]।

जन्तुविज्ञानस्य सर्वाङ्गरूपेण शास्त्रमेकं 'पशुपक्षिशास्त्रम्'-इति आचार्यहंसदेवस्य दुर्लभतया उपलभ्यते[६]। यं दृष्ट्वा ज्ञातं भवति यत् अस्य शास्त्रस्य अपि सुविस्तृता परम्परा आसीत्। 'युक्तिकल्पतरु'ग्रन्थे तु पृथक्-पृथक् पशुपक्षिणः अधिकृत्य विशेषज्ञतया रचितशास्त्राणां रचयितॄणाम् ऋषीणां च नामानि अपि लिखितानि सन्ति। यथा 'गजशास्त्रम्' इति रचयितार: पालकाप्यः, गार्ग्यः, वात्स्य: वैशम्पायनश्च; 'वृषभशास्त्रम्' वात्स्यः, गर्गश्च; 'मृगशास्त्रम्' गार्ग्यः, शंरवश्च; 'अविशास्त्रम्' भारद्वाजः।

[१] अथर्ववेदः ८.७.२७, ८.७.१७ ऋग्वेदः १०.१४५.२

[२] अथर्ववेदः ८.७.११

[३] बृहत्संहितायां 'वृक्षायुर्वेदाध्यायः' नाम्ना विषयाः संकलिताः सन्ति। अध्याय ५५

[४] शार्ङ्गधरपद्धतिग्रन्थे 'वृक्षायुर्वेद' इति प्रकरणम् अस्ति।

[५] आयुर्वेद का सुबोध इतिहास : डा. कन्हैया लाल तिवारी।

[६] अडियारपुस्तकालये चैन्नईस्थे संस्कृतपाण्डुलिपिपुस्तकसूची-९९

आचार्यवराहमिहिरस्य च 'वृहत्संहितायाम्' अपि पशुपक्षिणां संक्षेपेण वर्णनमुपलभ्यते[१]। सः आचार्यः तदर्थं पूर्वेषाम् आचार्याणां पराशरभागुरि-आदीनां कृते कृतज्ञतां प्रकटयति[२]। अस्यायमर्थः एतौ आचार्यौ जन्तुविज्ञानस्य कृतभूरिपरिश्रमौ लोकविश्रुतौ आस्ताम्। आचार्यहंसदेवः 'मृगपक्षिशास्त्रम्' - इति स्वग्रन्थे आचार्यपालकाप्य: 'करेणु-पुत्रः' इति पदेन प्रसिद्धः आसीत् इति उल्लिखति।

तस्य गजशास्त्रस्य नाम 'पालकाप्यम्'-इति नाम्ना एव लोकविश्रुतः आसीत्। 'मृगपक्षिशास्त्रे' पशुपक्षिणां सूक्ष्मरूपेण वर्णनं प्राप्यते। तेषां जातिभेदानां अपि वर्गीकरणं कृतमस्ति यथा - सिंहस्य षट्, व्याघ्रस्य त्रीणि, गजस्य त्रयोदश, गण्डस्य द्वयम्, भल्लूकस्य त्रीणि, श्रृगालस्य, षट्, वृकस्य त्रीणि, कुकुरस्य सप्त, गो: द्वादश, उल्लूकस्य सप्त, कुक्कुटस्य चत्वारि, मयूरस्य च षट् इत्यादिप्रकारेण बहूनां जातिप्रजातीनां वर्गीकरणमस्ति।

जन्तूनाम् आयुविवरणमपि प्राप्यते। यथा गजस्य शतम्, गण्डस्य द्वात्रिंशत्, सिंहस्य विंशतिः, व्याघ्रस्य षोडश, भल्लूकस्य चतुर्दश, उल्लूकस्य, काकस्य, चक्रवाकस्य, मयूरस्य, कुक्कुटस्य च पञ्चवर्षाणि आदि बहूनां जीवनवर्षाणि सामान्यजीवनस्य लिखितानि सन्ति। सः वर्णयति एतत् सर्वम् एतेषां पशुपक्षिणां समूहै: सार्धं बहुकालयावत् जीवनयापनेन तैः सह चिरपरिचयात् ज्ञातुं शक्यते "चिरपरिचयाद् बोद्धव्यं तद् इङ्गितं मृदूक्तिभिः" इति।

अश्वायुर्वेदे 'अश्वशास्त्रम्' इति नाम्ना केचन प्रकाशिताः अप्रकाशिताश्चापि वर्तन्ते। तेषु 'अश्वशास्त्रम्'[३] नामकग्रन्थे अश्वानां भेदानां, व्यवहाराणाम् आयुर्निर्णयादीनां वर्णनं सूक्षमरूपेण अस्ति। अप्रकाशितेषु 'अश्वायुर्वेद-सारसमुच्चयः' इति ग्रन्थः हस्तलिखितः[४] अस्ति। एतस्य ग्रन्थस्य अन्तिमभागः अपूर्णः अस्ति। अपरः 'अश्वचिकित्सा' इति नाम्ना पाण्डुलिप्या[५] वर्तते ,एतस्य प्रारम्भभाग: स्खलितः अस्ति।

---

[१] बृहत्संहिता अ. ६५.११, ५०, ५१, ५२, ५३

[२] बृहत्संहिता अ. ६१-११

[३] लेखकः श्रीनकुलः, प्रकाशकः (T.M.S.S.M.) तंजौरपुस्तकालयः, १९५८ तमे वर्षे।

[४] लेखकः किल्हण सुपुत्र विल्हणः। विश्वेश्वरानन्दपुस्तकालये, साधु आश्रमे, होशियारपुरे सुरक्षितः

[५] लेखकः शालिहोत्र नकुलः, विश्वेश्वरानन्दपुस्तकालये, साधु आश्रमे, होशियारपुरे सुरक्षितः

गजायुर्वेदेऽपि केचन प्रकाशिताः अप्रकाशिताश्चापि उपलभ्यन्ते। 'गजशास्त्रम्'[१]-इति नाम्ना ग्रन्थः ग्रन्थनदृष्ट्या नूतनमिव दृश्यते। अस्मादपि प्राचीनः एक ग्रन्थः 'हस्त्यायुर्वेद'[२]-इति नाम्ना अस्ति। एतत् प्रकाशनं सर्वाङ्गपूर्णं मूलमात्रं वृहदाकारे वर्तते। 'गजग्रहणप्रकार:'[३]-इति नामके ग्रन्थे गजानां वने ग्रहणविधिः गृहीतानाञ्च प्रशिक्षणं केन प्रकारेण करणीयम् इति विषये विशदतया चिन्तितम् अस्ति।

अन्येषां चतुष्पादपालितपशूनां विषये विशेषतया ग्रन्थाः न उपलभ्यन्ते। स्यादेवं अश्वगजयो: सेनादृष्ट्या राजनैतिकदृष्ट्या महत्त्वाधिक्याद् ग्रन्थपरम्परा किञ्चिद् दृश्यते। गोवृषभादीनां शास्त्रम् तु सामान्यजनेषु स्वाभाविकपरम्परायामेव अस्ति। किन्तु ग्रन्थपरम्पराऽपि निश्चयेन भवेदेव[४]। यतोहि एकः मध्यकालस्य ग्रन्थः 'वृषकल्पद्रुमः' इति संस्कृतस्य शास्त्रीयग्रन्थमाश्रित्य ब्रजभाषायां निबद्धः सुन्दरकलेवरयुक्तः पाण्डुलिप्याम् उपलब्ध: अस्ति[५] तथा च स्कन्दपुराणे गोगृहस्य निर्माणविधे: गोपालनव्यवस्थादीनां च निर्देश: अस्ति।

ब्रह्मपुराणेऽपि गोचिकित्सायाः वर्णनं प्राप्यते। वृहत्संहितायां गोः, अश्वस्य, कुक्कुटस्य, कूर्मस्य, छागस्य, कुक्कुरस्य, गजस्य इति सप्तानां पालितपशूनां वर्णनं पृथक् अध्यायेषु वर्तते।[६] वृहत्संहितायामेव दिनचराणां रात्रिचराणां जन्तूनां नामशः विश्लेषणं वर्तते। पुनश्च केषाञ्चित् पक्षिणां ध्वनिभेदाः सूक्ष्मतया वर्णिताः सन्ति। कुक्कुरस्य, श्रृगालस्य, मृगस्य, गोः, अश्वस्य, गजस्य, काकस्य च पृथक्तया अध्यायेषु

---

[१] लेखकः पालकाप्यः मुनिः, प्रकाशकः (T.M.S.S.M.) तंजौरपुस्तकालयः, ईसा १९५८ तमे वर्षे।

[२] लेखकः पालकाप्यः मुनिः, प्रकाशकः - आनन्दाश्रम संस्कृतग्रन्थावली, पुणे, महाराष्ट्रम्, ईसा १८४६ तमे वर्षे।

[३] लेखकः श्रीनारायणदीक्षितः, प्रकाशकः ओरियन्टलरिसर्च इन्स्टीटयूट, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालयः, तिरूपति, सन् १९६८ तमे वर्षे।

[४] गोलक्षणाध्यायः ६१.२.१४ , बृहत्संहिता

[५] विश्वेश्वरानन्दपुस्तकालये पाण्डुलिपिविभागे, साधु आश्रमे, होशियारपुरे सुरक्षितः।

[६] बृहत्संहितायामध्यायाः क्रमशः - ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७

ध्वनीनां भेदविवेचनं कृतम् अस्ति। एवमेव गर्गसंहिता-हारीतसंहिता-पाराशरसंहिता-आदिग्रन्थेषु जीवानां चेष्टादीनां वर्णनमुपलभ्यते। मुख्यतया एते ज्योतिष्शास्त्रस्य 'संहिता'-इति नामकस्य स्कन्धस्य ग्रन्थाः सन्ति। पुनरपि आनुषङ्गिकरूपेण अङ्गरूपेण च जीवशास्त्रस्य अंशाः प्राप्ताः भवन्ति।

इत्थं प्रकारेण एतत् बहुस्पष्टतया ज्ञातं यत् प्राचीनकाले प्राणिशास्त्रस्य सुदीर्घा परम्परा आसीत्[१], बहूनि शास्त्राणि आसन्[२]। ऋषयः ऋषिकल्पाः विद्वान्सश्च महता प्रयत्नेन महते जनलाभाय शास्त्राणीमानि उपबृंहितवन्तः आसन्।

---

[१] पाणिनीयव्याकरणस्य वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी इति ग्रन्थस्य रक्ताद्यर्थकप्रकरणे 'क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट् ठक्' इति सूत्रस्य 'विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्' इति वार्तिकस्य उदाहरणे 'वायसविद्यां वेद अधीते वा वायसविधिकः', 'गोलक्षणं वेद अधीते वा गौलक्षणिकः', 'अश्वलक्षणं वेद अधीते वा आश्वलक्षणिकः' व्याख्याकारः - श्रीगोपालदत्तपाण्डेयः, प्रकाशकः - चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनम् वाराणसी।

[२] तेषु केचन अधुना प्राप्ताः भवति, तेषु केचन पुस्तकालयेषु गृहेषु वा पाण्डुग्रन्थरूपेण अमुद्रिताः, अपठिताः अपि स्युः, केचन अन्यत्र नश्यमानाः स्युः। (तुलनीयम् 'सम्भाषणसन्देश'-संस्कृतपत्रिकायां (जून-२००३) चमूशास्त्रिणः लेखे 'मा म्रियध्वं ताडग्रन्थाः' इति लेखे)।

ब्राह्मण ग्रन्थों का परिचय



गुरुकुल प्रभात आश्रम, (टीकरी) भोलाझाल, मेरठ